उधरहि विमल विलोचन ही के

दिव्याञ्जन

चतुः सम्प्रदाय एवं श्रीरामानन्द और श्रीरामानुज सम्प्रदायों की परम्पराओं के साथ गलतापीठ का यथार्थ

सम्पादक : श्री वैष्णव हरिशंकर दास वेदान्ती

सियाराम बाबा की बगीची, डेहर के बालाजी, जयपुर

अनन्त श्री विभूषित श्री कृष्णदास जी 'पयोहारी जी' महाराज, संस्थापक, गलतापीठ, जयपुर

प्राक्कथन

प्रस्तुत पुस्तिक देखने में छोटी है किन्तु मेरी दृष्टि से यह लेख भगवद्दिच्छा से श्रीरामनन्द संप्रदाय के प्रति जिन दिवान्धों के द्वारा बड़े ही घटा-टोप के साथ जो भ्रम फैलाया गया है कि श्रीरामानन्द संप्रदाय स्वतन्त्र संप्रदाय नहीं है, यह तो श्रीरामानुज संप्रदाय से ही निकला है, उसको दूर करने के लिये ''दिव्याञ्जन'' का कार्य करेगा। इसीलिये इस लेख का नाम श्री गोस्वामी जी के वचनों के अनुसार ''उधरहि विमल विलोचन ही के'' इस नामकरण के साथ ''**दिव्याञ्जन**'' रखा गया है। वैसे इसके कलेवर को श्रीरामानन्द संप्रदाय के लिये प्रचारित विविध परम्पराओं को सम्मिलित करके प्रकाशन करने की अभिलाषा थी किन्तु परम पूज्य श्रीमणिराम छावनी के वर्तमान श्रीमहाराज के जन्मोत्सव मनाने के प्रसंग में पूज्य श्रीमहन्त श्री कमलनयनदास जी शास्त्री जी से 07.06.2017 के सन्त सम्मेलन का समाचार मिला तो इस लेख को पुस्तिका का रूप देकर इस शुभ अवसर पर विमोचन कराने की अभिलाषा ने ''परमपूज्य श्री खोजीद्वाराचार्य श्री काठियापरिवाराचार्य ब्रह्मपीठाधीश्वर परमार्थभूषण श्री नारायणदास जी महाराज से निवेदन किया तो उनका सन्देश 01.06.2017 को प्रात: मुझे प्राप्त हुआ, उसी के अनुरूप यथासम्भव प्रयत्न करके श्री त्रिवेणीमहाराज की तरफ से श्री महेश नरेडा जी ने अतीव स्वल्पकाल में इसको मूर्त रूप प्रदान किया। इसके लिये पूज्य महाराज की संस्तुति में मेरे द्वारा कुछ भी लिखा जाना सूर्य को दीपक दिखाने के समान होगा अत: उनके चरणों में सादर साष्टांग दण्डवत् ही उनके प्रति मेरी कृतज्ञता होवें।

हाँ, यहाँ पर मैं उन उदाहरणों को प्रस्तुत कर रहा हूँ जिनका खण्डन हो जाने से उनके जैसे सैकड़ों उदाहरण स्वत: धूलधूसरित हो जावेंगे। चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी से प्रकाशित श्रीरामानन्दाचार्य विरचित ''श्री वैष्णवमताब्जभाष्कर'' के भाषा व्याख्याकार श्री कृष्णानारायणाचार्य (डॉ० कमलाकान्त त्रिपाठी) जो कि जगदगुरु रामानुजाचार्य श्री वासुदेवाचार्य विद्याभाष्कर के शिष्य हैं तथा इन्हीं की प्रेरणा से, किसी रामानुजी विद्वान ने श्री रामानन्दीय ग्रन्थ के ऊपर अपनी लेखनी को संचालित करने का श्रम केवल इसलिये किया है कि श्रीरामानन्द संप्रदाय स्वतन्त्र संप्रदाय नहीं है अपितु यह श्री रामनुजाचार्य की परम्परा से निकला है। इसके लिये उन्होंने ''प्राग्वक्'' के रूप में 56 पृष्ठ काले

किये हैं जिसमें रामानुजियों के वकील रामटहलदास प्रभृति के झूँठे उदाहरणों को उद्धृत किया गया है, जिनका खण्डन ''परम्परा परित्राण'' में सप्रमाण स्वामी श्री भगवताचार्य जी के द्वारा उसी समय कर दिया गया था जिसका किसी ने भी अभी तक उत्तर नहीं दिया। आज लगभग 90-100 वर्ष के अन्तराल में पुनः अविकल उसी पूर्णपक्ष को अपने शिष्य के द्वारा उद्धृत करवाना, क्या विद्याभाष्करत्व के विपरीत आचरण नहीं है ? यहाँ पर मैं ज्यादा कुछ न लिख कर केवल उन घटा-टोप विद्वानों से एक ही प्रश्न का उत्तर चाहता हूँ कि जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य जी के जन्म से 71 वर्ष बाद जन्म लेने वाले श्री बरवरमुनि श्रीरामानन्दाचार्य के 14वीं पीढ़ी से पूर्व के आचार्य कैसे हो जोयेंगे ?

इसी प्रकार ''श्री संप्रदाय का इतिहास'' लेखक जगद्गुरु श्री रामानुजाचार्य श्री वत्सपीठाधिपति स्वामी श्री अनिरूद्धाचार्य वेंकटाचार्य ने भी उपरोक्त ग्रन्थ में श्री रामानन्दाचार्यजी को श्री रामानुजाचार्य की परम्परा में बताने का असम्भव श्रम किया है तथा ''श्री देवरहा बाबा'' नामक ग्रन्थ में ऐसा ही देखने को मिला है। यह सब श्री भक्तमाल में विकृत की गयी परम्परा के कारण इतिहासकारों की लेखनी में आया। उन लोगों ने प्रत्यक्ष प्रमाणों को देखे बिना अन्धानुकरण से लिखा जिसके कारण आज के रामानुजी डुगडुगी बजा रहे हैं। जो इस प्रत्यक्ष प्रमाण की चोट से फूट चुकी है। जिसके परिणामस्वरूप मैं आशा करता हूँ कि यदि उनमें किंचित् भी सत्य को स्वीकार करने की मंशा मन में होगी और इस लेखरूपी ''दिव्याञ्जन''से अपने अन्तकरण के नेत्रों अन्जित करेंगे तो निश्चित उन्हें सत्य का दर्शन होगा तथा श्रीरामानन्दीय पाठक महानुभाव यदि मेरे द्वारा कृत इस लघु प्रयास से किंचित संतुष्ट होंगे तो मैं अपने को कृत-कृत्य मानता हुआ उनसे प्रार्थना करता हूँ कि वे इस दास को संप्रदाय सेवा की सामर्थ्य तथा भगवत् प्रीति का आर्शीवाद प्रदान करने की कृपा करें।

सतामनुचरः

''श्रीवैष्णव'' हरिशंकर दास ''वेदान्ती''

सियाराम बाबा की बगीची, डेहर के बालाजी, जयपुर

सीतानाथ समारम्भां शुकवोधायनान्विताम्।
अस्मदाचार्य पर्यन्तां वन्दे गुरु परम्पराम्।।

अनादि कालिक वैष्णव धर्म के माध्यम से प्राणीमात्र के अन्दर परमात्मदर्शन की योग्यता एवं जीवन में सद्गुणों के विकास के लिये,साकेताधिपति भगवान् श्रीसीतारामचन्द्रजी एवं गोलोक बिहारी श्रीराधाकृष्णजी का इस धराधाम पर

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।। (गीता)

एवं

जब जब होइ धरम के हानी।
बाढ़हि असुर अधम अभिमानी।।
तब तब प्रभु धरहि विविध सरीरा।
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।। (रा.च.मा.)

के अनुसार अवतार लेकर भक्तों का संरक्षण एवं धर्म की स्थापना करते हैं तथा अनावतार दशा में इन्हीं के मंगल चरित्रों के माध्यम से लोक कल्याण होता है।

इसी वैष्णवी उपासना के विस्तार के लिये अनादिकाल से वैष्णवों के चार सम्प्रदाय चले आ रहे हैं। जैसे–रणहर पुस्तकालय डाकोर से लगभग 125वर्ष पूर्व में प्रकाशित भजन रत्नावली में **''श्रीब्रह्मरूद्रसनका वैष्णवा: क्षितिपावना:''** अर्थात् श्री सम्प्रदाय, रूद्र सम्प्रदाय, ब्रह्म सम्प्रदाय एवं सनकादि सम्प्रदाय ये चार सम्प्रदाय हैं। इन्हीं सम्प्रदायों के अन्तर्गत विशिष्ट परिस्थितियों में मध्यवर्ती आचार्यों का प्राकट्र्य हुआ। जिससे तत्तत् सम्प्रदाय को उनके नाम से जाना जाने लगा जैसे कि

रामानन्दे श्रियंविद्यान्मध्वमाचार्ये चर्तुमुखम्।
विष्णु स्वामिनि रूद्रन्तु निम्बार्के च चतु:सनान।।

(सदाचार महोदधि)

अर्थात् श्रीरामानन्दाचार्यजी श्रीसम्प्रदाय के श्रीमाध्वाचार्यजी ब्रह्म सम्प्रदाय के श्रीविष्णु स्वामीजी रूद्र सम्प्रदाय के और श्रीनिम्बाकाचार्यजी सनकादि सम्प्रदाय के मध्यवर्ती आचार्य माने जाते हैं। इन्हीं के लिये कहा गया है

''चत्वारो भगवद्भक्ता जगती धर्मस्थापका:। एतेषामनुयायिनों द्विपंचाशत् विजज्ञरे।।

इन्हीं चारों महान धर्म के संस्थापक आचार्यों के 52 विशिष्ठि अनुयायी हुए जिन्हें द्वाराचार्यों के रूप में जाना जाता है। जिनकी भारत भर में विशिष्ट प्रधान पीठें हैं, जिन पीठों के अन्तर्गत सहस्त्रों मठ मन्दिर हैं। इसके साथ इन्हीं चारों सम्प्रदायों के विरक्त वैष्णवों सन्त महन्त मण्डलेश्वर पीठाचार्य एवं आचार्य पीठों का सम्बन्ध अनी अखाड़ों एवं द्वारों से मिलेगा और चारों महाकुम्भों में इन्हीं चारों सम्प्रदायों के पीठाचार्यों, मण्डेलश्वरों एवं महामण्डेलश्वरों, श्रीमहन्तों का अनी अखाण्डों के साथ महाकुम्भों के अवसर पर शाही स्नान में जाने का अधिकार है। श्रीरामानुज सम्प्रदाय का नहीं है। कुम्भ पर्वों पर अनादिकाल से अखाण्डों एवं चार सम्प्रदाय के मुख्य द्वारों पर अपने-अपने आचार्यों के साथ ''**श्रीरामकृष्णाम्यांनम् नमः**'' लिखा जाता है। भोजन की पंक्ति में जो जयकार बुलाई जाती हैं उसमें भी सबसे पहले ''**श्रीरामकृष्ण की जय**''बुलाई जाती है। जबकि श्रीरामानुज सम्प्रदाय में श्रीमन्नारायण की जयकार के साथ नमो भगवत वासुदेवाय लिखने की परम्परा है।

चतुः सम्प्रदाय के आचार्यों के प्राकट्य की बात भविष्य पुराण तृतीय प्रति सर्ग पर्व खण्ड 4 के अ.7-8 में लिखा है कि चारों सम्प्रदायों का प्राकट्य सूर्य बिम्ब से हुआ है। जिसमें श्रीरामानन्द-निम्बार्क, माध्वाचार्य और विष्णु स्वामी का ही वर्णन एक साथ किया गया है। जबकि श्रीरामानुजाचार्यजी का विविध महापुरुषों का वर्णन चतुर्थ खण्ड के 14वें अध्याय में है। श्रीरामानन्दाचार्य यथाः-

इत्युक्तवा स्वस्य विम्वस्य तेजो राशिं समन्ततः।
समुत्पाद्य कृतं काश्यां रामानन्दस्ततोऽभवत्।।
वाल्यात्प्रभृति स ज्ञानी रामनाम परायणः।
पित्रा मात्रा यदात्यक्तो राघवं शरणं गतः।।

श्री स्वामी रामानन्दाचार्य के लिये वैश्वानर संहिता में ''**रामानन्दः स्वयं रामः प्रादुर्भूतो महीतले**''। अर्थात् श्रीरामजी ही श्रीरामानन्दाचार्य के रूप में भूतल पर अवतरित हुए क्योंकि ''**सूर्य मण्डल मध्यंस्थ रामं सीता समन्वितम्**''(सनत्कुमार संहिता)। इसलिये सूर्यमण्डल से अवतरित होने वाली घटना भी युक्तियुक्त है।

अब एक बात और विशेष रूप से देखने की है कि चतुः सम्प्रदाय में श्रीसम्प्रदाय के रूप में श्रीरामानन्द सम्प्रदाय ही है और कोई नहीं, क्योंकि संस्कृत

भाषा के विशालतम शब्दकोष ''**शब्दकल्पद्रुम**'' जिसके लेखक ''**राजा राधाकान्तदेव**'' हैं। जिनका जीवनकाल ईस्वी सन् 1784-1867 है। ग्रन्था प्रकाशन काल 1828-1858 है में आपने सम्प्रदाय शब्द की व्याख्या के प्रसंग में लिखा है।

अत: कलौ भविष्यन्ति चत्वपार: संप्रदार्यिन:।
श्रीमाध्विरूद्र सनका वैष्णवा: क्षितिपावन:।।

(पद्मपुराण)

वही पर तन्त्रोक्तवैष्णव सम्प्रदायों का वर्णन यथा श्रीशिव उवाच-

वैखान: सामवेदादी श्रीराधाबल्लभी तथा।
गेकुलेशो महेशानी: तथा वृन्दावनी भवेत्।।
रामानन्दी हविश्याशी निम्बार्कश्च महेश्वरि।।

(शक्ति संगम तन्त्रे 1खण्डे8पटले)

इस क्रम में 22 श्लोक हैं किन्तु कहीं पर भी रामानुजी या श्रीरामानुज का उल्लेख नहीं है। इसी प्रकार ''**वाचस्पत्यभिधान**'' में भी वर्णन है। अत: जो लोग श्रीरामानुज सम्प्रदाय के लिये 80-90साल पुरानी कल्पना करते हैं वह कोरी कल्पना ही है। वस्तुत: चतु: सम्प्रदाय में श्रीसम्प्रदाय से ही श्रीरामानन्द सम्प्रदाय ही है।

दूसरी बात सन् 2734 ईस्वी जयपुर नरेश जयसिंह की अध्यक्षता में जो चतु: सम्प्रदाय की बैठक हुई थी उसमें उत्तर भारत में गलता पीठ के साथ समग्र उत्तर भारत में श्रीरामानन्दा सम्प्रदाय की ही प्रमुखता मानी गयी। इससे भी श्रीसम्प्रदाय श्रीरामानन्दी ही सिद्ध होता है और देखे ऋग्वेदीय पुरुष सुक्त में ''**श्रीश्चते लक्ष्मीश्य पत्न्यौ**'' यहाँ पर लक्ष्मीजी से तो श्रीरामानुज की परम्परा में ''**लक्ष्मीनाथ समारम्भाम्**'' है ही। अत: श्री शब्द का प्रयोग श्रीसीताजी के लिये ही है और श्री शब्द सीताजी के लिये वाल्मीकीय रामायण में कई बार आया है। जैसे **श्रिय: श्रीश्चभवेद्ग्रया कीर्त्या: कीर्ति: क्षमा क्षमा**'' (वा.44-45) **तामेवमुक्त्वा भ्राजन्ती सीतां साक्षादिव श्रियम्** (वा. 113 श्लोक52) श्रीअग्रदेवाचार्यजी ने अष्टाक्षर मंत्र की व्याख्या में लिखा है ''**श्री शब्देन भगवती सीतोच्यते**'' श्री शब्द भगवती सीताजी के लिये प्रयुक्त होता है। इसलिये सर्वेषाभवताराणांमवतारोरघुत्तम: साकेताधिपति के द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय ही

श्री सम्प्रदाय है और श्रीरामजी के अवतार श्रीरामानन्दाचार्यजी ही उसके प्रधान आचार्य हैं। न कि शेषावतार श्रीरामानुजाचार्यजी महाराज। चतुः सम्प्रदाय के वैष्णवजनों में द्विभुज भगवान् की उपासना की ही प्रधानता है, क्योंकि आनन्द संहिता में कहा गया है–

स्थूलमष्ट भुजं प्रोक्तं सूक्ष्मं चैव चतुर्भुजम्।
परं तु द्वि भुजं रूपं तस्तादेतत् त्रयं यजेत्।।

यहाँ तीनों रूपों के यजन की बात है किन्तु पर रूप द्विभुज कहा गया है, जो कि साकेत बिहारी एवं गोलोक बिहारी श्रीकृष्ण का है। इस बात की पुष्टि नारदपंचरात्रि के इन वचनों से होती है–

आनन्दों द्विविध: प्रोक्त: मूर्तश्चामूर्त एव च।
अमूर्तस्याश्रयो मूर्त: परमात्मानराकृति।।

अर्थात् मूर्तामूर्त आनन्द में निराकार आनन्द के आश्रय सगुण साकार नराकृति भगवान् श्रीरामकृष्ण ही हैं। इसलिये चतुः सम्प्रदाय के सभी वैष्णव इन्हें ही अपना ध्येय–गेय मानकर विशेषकर इन्हीं की अराधना–उपासना करते हैं। जबकि श्रीरामानुज सम्प्रदाय में चतुर्भुज श्रीमन्नारायण की उपासना पर बल दिया जाता है। इसके अतिरिक्त श्रीरामानुज सम्प्रदाय के आचार्यों द्वारा लिखे गये कई ग्रन्थों में श्रीरामकृष्ण मन्त्रों की निन्दा की गई है जैसे कि श्रीवचनभूषण रचियता श्रीलोकाचार्यजी लिखते हैं–

पुत्र कामानां राममन्त्रादय: ऐश्वर्य कामानां गोपालमन्त्रादाय:।
ईश्वरेण नियमेन कल्पितत्वात् प्रायेण क्षुद्रफलप्रदा एव।।

अर्थात् पुत्र की कामना वालों के लिये राममन्त्र, ऐश्वर्य की कामना वालों के लिये गोपाल मन्त्र है। भगवदीय नियम के अनुसार ये मन्त्र मुक्ति नहीं देते अपितु सांसारिक क्षुद्र फल देने वाले हैं।

इसी प्रकार प्रपनामृत में श्रीरामजी की निन्दा की गई है। यथा–

अयोध्यावासिनामेषां लोकं सान्तानिकपुरा:।
प्रददौ कृपया रामस्तेषामपि परंपदम्।
प्रदातुकाम: स तदा वेदान्तिन् कुरराडभूत।।

(प्र.अ. 115 श्लोक 34–35)

अर्थात् श्रीरामजी अयोध्यावासियों को पहले मुक्ति नहीं दे सके थे इसलिये कलियुग में कुरेशजी के नाम से उत्पन्न होकर श्रीरामानुजजी से श्रीनारायण मन्त्र सुने तब अयोध्यावासियों को परम पद दे सके अर्थात् श्रीरामजी अयोध्यावासियों को जब मुक्ति नहीं दे सकते तो अन्यों की तो बात ही क्या? इस प्रकार की भावना श्रीरामानुज सम्प्रदाय की है। जबकि चतुः सम्प्रदाय के वैष्णव अपने आराध्य की उपासना के अन्तगर्त ही सभी स्वरूपों को मानते हुए सभी का आदर करते हैं किसी की निन्दा नहीं करते।

वस्तुतः चतुः सम्प्रदाय में वर्णित श्रीसम्प्रदाय श्रीरामानन्द सम्प्रदाय ही है। जिसके लिये सदाशिव संहिता में कहा गया है कि **राजमार्गमिमं विद्धि रामोक्तं जानकीकृतम्** अर्थात् श्रीरामजी के द्वारा कहा गया है एवं श्रीजानकीजी के द्वारा प्रसारित यही राजमार्ग है। हारीत स्मृति में जानकीजी को मन्त्रराज का ऋषि कहा गया है। यथा–**श्रीराम षड़क्षर मन्त्रस्य जानकी ऋषिः** इत्यादि। इस प्रकार श्रीसम्प्रदाय की परम्परा श्रीरामजी से श्रीकृष्णदासजी पयहारी पर्यन्त अग्रदेवाचार्यजी द्वारा वर्णित गुरु परम्परा ही आर्ष ग्रन्थों में उपलब्ध परम्परा के अनुरूप है जैसे कि वाल्मीकि संहिता, अगस्त संहिता, मैथिली महोपनिषद् आदि।

सामान्यजन समुदाय यह जानता है कि शेषावतार श्रीरामानुजाचार्य अर्थात् श्रीलक्ष्मणजी जो कि अनन्य श्रीरामोपासक हैं। वे राम सेवार्थ अपना सर्वस्व न्यौछावर करने पर तुले रहते हैं। श्रीवाल्मीकीय रामायण में श्रीलक्ष्मणजी, श्रीरामजी को सुख पहुँचाने के लिये क्या कहते हैं। देखें–

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यजानतः। उत्पथप्रतिपन्नस्य कार्य भवति शासनम्।।

(2/21/13)

अर्थात् मोह बस कर्तव्य और अकर्तव्य के ज्ञान से शून्य उत्पथ मार्ग में चलने वाले गुरु, माता, पिता, गुरुजनों के ऊपर भी अनुशासन करना उपयुक्त है। इसके आगे और भी कहते हैं **हनिष्ये पितरं वृद्धं कैकेययासक्त मानसम्।** श्रीराम सेवार्थ यहाँ तक कह देते हैं कि कैकयी के प्रति आसक्त मन वाले पिता का मैं वध कर दूँगा। श्रीलक्ष्मणजी के इन वाक्यों में केवल अपने आराध्य मन वाले श्रीराम को सुख पहुँचाने का भाव है।

लेकिन जब भगवान् श्रीरामजी ने समझाया तो समझ गये और प्रभु राम के सामने सारे संसार के सम्बन्धों को तुच्छ मानते हुए कहते हैं–

गुरु पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू।।

(रा.च.मा.अ.दो.72)

अर्थात् जब श्रीरामजी ने आपको प्रजा, परिवार, माता–पिता गुरुजनों की सेवा हेतु तथा राजधर्म की पालना के लिये अवध में रहने के लिये कहा तो आपने कहा मैं आपके अतिरिक्त गुरु, माता, पिता किसी को नहीं जानता हूँ क्योंकि मैंने अपने समस्त रिश्तों को आप में ही समाहित कर रखा है।

ऐसे श्रीराम सेवा परायण श्रीलक्ष्मणजी जीवाचार्य का ही अवतार,आचार्य के रूप में श्रीरामानुजाचार्यजी का हुआ। जिन्होंने अपनी मेधा का लोहा अपने विद्या गुरु यादवप्रकाश को बचपन में ही मनवा दिया था, जिनका विस्तृत चरित्र प्रपन्नामृत एवं भक्तमाल में उपलब्ध है।

विरक्त दीक्षा (संन्यास) के उपरान्त आपने देशाटन किया जिसमें आपके साथ 1000 विरक्त संत थे। उनके साथ जब आप नीलाचल जगन्नाथपुरी पहुँचे तो वहाँ पुजारियों के क्रियाकलापों में आचार संहिता का दर्शन किया तो उन्हें हटा कर स्वयं पूजा करने लगे, इस पर भगवान् ने श्रीरामानुजाचार्यजी को खूब समझाया किन्तु आप नहीं माने तब भगवान् श्रीगरुड़जी को आज्ञा प्रदान की कि आप इनको यथास्थान पहुँचा दो और फिर श्रीगरुड़जी ने श्रीरामानुजाचार्यजी को शिष्य मण्डली के साथ भूतपुरी श्रीरंगनाथ धाम पहुँचा दिया।

जिससे श्रीजगन्नाथ भगवान् के पण्डे पुजारी श्रीजगन्नाथ की पुनः सेवा को पाकर बड़े प्रसन्न हुए और उधर शरणागत प्रतिपालकत्व के साथ भगवान् की भक्त वत्सलता को देखकर श्रीरामानुचार्यजी भी परम आल्हादित हुए। ये तो श्रीरामानुजाचार्यजी की भगवान् के साथ आत्मीयता की लीला है।

लेकिन उनके अनुयायीगण इस रहस्य को न समझ कर इसको आदर्श मानकर अनादि श्रीसम्प्रदाय (श्रीरामानन्द सम्प्रदाय) जिसके लाख से अधिक मठ, मन्दिर पूरे भारत भर में फैले हुए हैं। इसके साथ श्रीवैष्णव चतुः सम्प्रदाय के संगठन की 52 द्वारा गद्दियों में से 36 द्वारा गद्दियाँ श्रीरामानन्द सम्प्रदाय की हैं। दिगम्बर, निवार्णी, निर्मोही इन तीनों अनियों के साथ 17 अखाण्डों में सर्व श्रीरामानन्द सम्प्रदाय का वर्चस्व है। उत्तर भारत में तो अयोध्या, चित्रकूट, प्रयाग, वृन्दावन, हरिद्वार आदि तीर्थ तो श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के गढ़ हैं।

इसलिये श्रीरामानुजानुवर्तीगणों ने तिलक और सिद्धान्त की समानता के साथ श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के सन्तों की सरलता को देखकर इनमें प्रविष्ट हो गये। ये लोग विद्वान तो थे ही अतः श्रीसम्प्रदाय (श्रीरामानन्द सम्प्रदाय) के सन्तों ने इनको पर्याप्त सम्मान और संरक्षण प्रदान किया।

इतिहास गवाह है कि इनके ऊपर जब-जब संकट आया तब-तब सैनिक पद्धति से इनकी रक्षा की एवं शास्त्रार्थ में इन्हें जिताया। प्रतिवाद भयंकराचार्य के ऊपर प्राणान्त हमले से श्रीधीरमदास जी के नागाओं के कई बार प्राणपन से रक्षा की। अनेक बार श्रीरंगाचार्य के शिष्य श्रीरामप्रपन्नाचार्य के सम्मान में उनकी पालकी तक इस सम्प्रदाय के भोले-भाले विरक्त सन्त महन्तों ने उठाई। (रामानन्द सम्प्रदाय तथा हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव पृ.160) इन्हीं बातों का लाभ उठाकर श्रीसम्प्रदाय (रामानन्द सम्प्रदाय) को आत्मसात करने के उद्देश्य से श्रीरामानन्द सम्प्रदाय की कई प्रधान पीठों में जाकर योजनाबद्ध तरीके से श्रीरामानन्द सम्प्रदाय की विशुद्ध परम्परा के पूर्वाचार्य श्रीपुरुषोत्तमाचार्य के पूर्व और श्रीरामानुजचार्य के मध्य में कुरेश, पराशर, लोकाचार्य, देवाधिपाचार्य, शैलेशजी और श्रीवरवर मुनि को जोड़ा गया है।

यह जोड़ भाग सन् 1914 ईस्वी में छपी रामार्चन पद्धति का है और सन् 1935 में औरों के साथ कुरेश, माधाचार्य, वोपदेव देवाधिचार्य को जोड़ा गया तथा निज गुरु परम्परा में श्रीरामानुज के बाद श्रीगोविन्दाचार्य, पराशर भट्ट्ट वेदान्ती, कलिवैरी, कृष्णपाद, लोकाचार्य, शैलेश और बरवर मुनि को जोड़ा गया। मैं समझता हूँ कि इस जोड़-घटाने के कार्य में कई लोग लगे होंगे, जिसके कारण भिन्न-भिन्न परम्परायें बन गयीं और यह भी सत्य है कि जब चोर चोरी करता है तो कुछ न कुछ निशानी छूट ही जाती है। यही कहावत चरितार्थ हो गयी। इसी कारण से सन् 1919 में विज्ञ महापुरुषों ने इनकी चोरी पकड़ ली।

इस प्रकार 6-7 गड़बड़ झाले वाली परम्परायें ''श्रीराममन्त्र राज परम्परा'' नामक पुस्तक में दी गई है। इसके अतिरिक्त श्रीराम स्नेही सम्प्रदाय भी गलता और रैवासा पीठ से निकला है, इसलिये वहाँ की पीठों में भी इसी प्रकार किया गया। जिसके परिणाम स्वरूप खोजने पर अनेक विकृत परम्परायें मिलीं, लेकिन इन्हीं के मध्य श्रीअग्रदेवाचार्य कृत गुरु परम्परा भी प्राप्त हुई,जिसके अनुसार श्रीरामानन्द सम्प्रदाय की गुरु परम्परा का उल्लेख श्रीरूपकलाजी के द्वारा भक्तमाल

पर ईस्वी सन् 1905 से पूर्व में की गई टीका में किया गया है। उस समय तो कोई सम्प्रदायिक विवाद भी नहीं था। वहाँ पर भी श्रीअग्रदास की परम्परा प्राप्त हुई।

इसके अतिरिक्त वाल्मिकीय रामायण की रामायण शिरोमणि टीका में शुक बोधायन को परम्परा में स्मरण किया गया है। मैथिली महोपनिषद्, वाल्मीकि और अगस्त्य संहिताओं में भी अनुपूर्व परम्परा प्राप्त हुई है। जिससे सिद्ध हो गया कि श्री रामानन्द सम्प्रदाय ही विशुद्ध श्रीसम्प्रदाय है,जिसकी चातु: सम्प्रदाय के संगठन में परिगणना है जिसके द्वारे और अखाड़े हैं जो कि रामानुज की परम्परा नहीं है।

तिलकादि की भूलभुलैया में हम लोग भी अपने सम्प्रदाय के स्वरूप को भूल गये। इससे अधिक और क्या होगा कि राम मन्त्र की उपासना होते हुए भी कितने ही रामानन्दी अपने को रामानुजी मानने लगे।

इसके परिणाम स्वरूप 1919ईस्वी में तोताद्री मठ के आचार्यजी ने अयोध्या में आकर अपने प्रवचनों के माध्यम से वैरागियों की कण्ठी उतरवाना चालू कर दिया। यह बात जब अयोध्या के विशिष्ट महन्तों को मालूम पड़ी तो अयोध्याजी में कोलाहल मच गया। इसके बाद अयोध्या में **''पुरातत्वानुसन्धायनी समिति''** बनी जिसके माध्यम से कई परम्परायें प्राप्त हुईं तथा श्रीरामानुजीय कई ग्रन्थों में रामकृष्ण मन्त्रों को मुक्ति प्रदाता न कहकर तुच्छ फल देने वाला लिखा गया है। इन सब बातों को देखकर श्रीसम्प्रदाय में दो पक्ष हो गये। एक पक्ष के कुछ लोग अपने को श्रीरामानुजजी से जोड़ने लगे,दूसरा पक्ष अपनी प्राचीन परम्परा के साथ सर्वतन्त्र स्वतन्त्र श्रीरामानन्द सम्प्रदाय की परम्परा को स्वीकार करने लगा। इस विषय को लेकर कई बार पर्चेबाजी और शास्त्रार्थ हुए।

अन्त में सन् 1921 के उज्जैन महाकुम्भ में तोताद्रि के स्वामीजी ने अपने एक विद्वान को भेज कर शास्त्रार्थ के लिये चुनौती दी। जिसके परिणामस्वरूप वैष्णव धर्म प्ररोचक पण्डित श्रीसरयूदास वेदान्ती, स्वामी श्रीभगवताचार्य, स्वामी श्रीरघुवराचार्य आदि विद्वान अयोध्या से उज्जैन में शास्त्रार्थ के लिये बुलाने पर उज्जैन पहुँचे। उधर तोताद्रि स्वामी के शास्त्रार्थ की चुनौती को अखाड़ों एवं खालसों के महन्तों ने स्वीकार करके स्थान के रूप में दिगम्बर अखाड़े में दिनांक 09.05.1921 को शास्त्रार्थ होना सभी पक्षों की तरफ से निश्चित हो गया। शास्त्रार्थ का विषय था रामानुजीय ग्रन्थों में रामकृष्ण मन्त्रों की निन्दा के साथ श्रीराधाजी की, श्रीरामजी की निन्दा की गयी है। इसका प्रतिकार करने के लिये

तोताद्रि स्वामी की तरफ से श्रीरामप्रपन्नरामानुज दासजी आये। इधर पंचों की तरफ से स्वामी श्रीरघुवराचार्य और स्वामी श्रीभगवताचार्य को नियुक्त किया गय। पंच थे 1. दिगम्बर अनी के श्री महन्त रामदुलारेदासजी महाराज, 2. निर्वाणी अनी के श्रीमहन्त श्रीसीतारामदासजी महाराज, 3. निर्मोही अनी श्रीमहन्त श्री जगन्नाथदासजी, 4. श्री कमलदासजी महाराज, 5. श्री महन्त श्रीजगन्नाथ दासजी बारहभाई डांड़िया। शास्त्रार्थ में श्रीरामकृष्ण मन्त्रों की निन्दा वाले प्रश्नोत्तरों के पश्चात् रामप्रपन्नरामानुदास ने अन्तिम प्रश्न किया कि श्रीरामानन्द सम्प्रदाय की स्वतन्त्रता में क्या प्रमाण है? तब वाल्मीकि संहिता के निम्न श्लोक को उद्धत किया गया–

इमां सृष्टिं समुत्याद्य जीवानां हिकाम्यया।
आद्यां शक्तिं महादेवीं श्रीसीतां जनकात्मजाम्।।
तारकं मन्त्रराजं तु श्रावयामास ईश्वरः।
जानकी तु जगन्माता हनुमन्तं गुणाकरम्।।
श्रावयामास नूनं स ब्रह्माणं सुधियां वरम्।
तस्माल्लेभे वशिष्ठर्षिः कमादस्मावातरत्।।

इन श्लोकों का लिखित उत्तर देने के लिये रामानुजीय विद्वान ने दो दिन का समय माँगा। पंचों ने ये बात उनसे लिखित में ली और कहा कि यदि आप परसों तक इसका उत्तर नहीं देंगे तो श्रीरामानन्द सम्प्रदाय से पृथक होकर श्रीअग्रदेवाचार्य कृत गुरु परम्परा को ही सही मानने लग जायेगा लेकिन उनका उत्तर आज तक नहीं आया और श्रीरामानन्द सम्प्रदाय पूर्ववत् श्रीसम्प्रदाय हो गया। इसके पश्चात् सम्पूर्ण श्रीरामानन्द सम्प्रदाय ने श्री स्वामी अग्रदेवाचार्यजी कृत गुरु परम्परा को ही विशुद्ध श्रीसम्प्रदाय की परम्परा मानना चालू कर दिया और भ्रमवश जो लोग अपने को रामानुजी मानने लगे थे उनकी भी समझ में आ गया कि श्रीरामानन्द सम्प्रदाय श्रीरामानुज सम्प्रदाय का अनुवर्ती नहीं है।

इन शास्त्रार्थ के बाद विशेष घटना यह हुई कि चतुः सम्प्रदाय के संगठन में जो श्रीरामानुजी श्रीरामानन्दियों की सहायता से शाही स्नान करते थे उनका सदा के लिये चतुः सम्प्रदाय के संगठन से बहिष्कार हो गया।(स्वामी भगवताचार्य प्रथम खण्ड)

मैं यहाँ पर समस्त रामानुजियों से एक प्रश्न करता हूँ कि जो रामानुजी अपने को

श्रीसम्प्रदाय का सर्वेसर्वा कहते हैं तथा रामानन्दियों को अपना अनुवर्ती मानते थे, वे बहिष्कृत होने के बाद कुम्भ मेला के न्यायालय में अपना दावा क्यों नहीं किया? क्योंकि अनी अखाड़ों द्वारों से सुसज्जित श्री ब्रह्मारुद्र, सनकादिक, चतुः सम्प्रदाय में उनकी कभी गणना ही नहीं थी। ये तो रामानन्दियों की सहृदयता के कारण बीच में आये और अपनी करनी के कारण बीच में ही बाहर हो गये।

न्यायालय सम्बन्धी बात मैंने इसलिये कही क्योंकि कुम्भपर्व पर उठने वाले विवादों का निस्तारण कुम्भ मेला के न्यायालय में अनादि काल से चला आ रहा है। उदाहरणत: सम्वत् 1846 नासिक कुम्भ में रामकुण्ड पर स्नान को लेकर शैव और वैष्णवों में झगड़ा हुआ। जिसमें 12000 बारह हजार साधु मारे गये, जिसकी फर्याद पेशवा न्यायालय में हुई और न्यायालय ने वैष्णवों को रामकुण्ड पर और गोसांइयों को त्रयम्बकेश्वर में स्नान का आदेश दिया,जिसे दोनों पक्षों ने स्वीकार किया। वर्तमान में चतु: सम्प्रदाय के श्रीमहन्त दिनेशदासजी का निर्णय भी कुम्भ मेला न्यायालय ने ही किया। उपरोक्त विषय **''जागृतिवैष्णव''** के अन्दर छपे ताम्रपत्र के अनुसार है। जिसमें श्रीरामानन्द श्रीनीमानन्दजी, श्रीविष्णु स्वामीजी, श्रीमाधवाचारीजी का ही चतु:सम्प्रदाय के रूप में उल्लेख है। ताम्रपत्र में सर्वप्रथम श्रीसीताराम समर्थ लिखा गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि श्रीसीताराम की उपासना करने वाले श्रीसम्प्रदाय का वर्चस्व होने के कारण उनके इष्ट और उनके आचार्य का नाम सर्वप्रथम लिखा गया।

यहाँ पर यह बात भी स्पष्ट कर देना उचित होगा कि गोसांईयों के साथ वैष्णवों की दुश्मनी रामानुजियों के साथ आने से ही प्रारम्भ हुई, इससे पहले नहीं थी क्योंकि चतु: सम्प्रदाय के वैष्णवों के अन्दर कहीं पर शिवद्रोह की दृष्टि नहीं है। जैसे कि गोस्वामी तुलसीदासजी श्रीरामजी के मुखारबिन्द से कहलाते हैं कि–

शिवद्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहु मोहि न भावा।।

इसी प्रकार श्रीजी एवं गोस्वामीजी नामापराध के प्रकरण में **''श्रीभक्ति सन्दर्भ''** में कहते हैं कि **''शिवस्य श्रीविष्णोर्य इह गुणमादि सकलं धियाभिनं पश्येत् स खलु हरिनामाहितकर:''** अर्थात् शिव और विष्णु के नामों में भेद नहीं मानना चाहिये। मानने वाला नामापराधि हो जाता है। चतु:सम्प्रदाय के वैष्णव रामेश्वरधाम की यात्रा करने में संकोच नहीं करते, जबकि मैंने सुना है श्रीरंगम् के वैष्णव रामेश्वरम् नहीं जाते। कारण स्पष्ट है।

श्रीरामानुजाचार्यजी की यादवप्रकाश ने हत्या करने की योजना बनाई तो जब श्रीरामानुजाचार्यजी समर्थ हुए तो इन्होंने भी शैवों के ऊपर अत्याचार किया होगा। शिव और शैव निन्दा के कारण वीर शैवों और रामानुजियों में संघर्ष होने लगा। वीर शैवों के अनुरोध से चोलराज कृमिकण्ठ ने इनका प्रतिकार किया जिसके परिणामस्वरूप श्रीरामानुजाचार्य ने कषाय दण्डादि का त्याग करके श्रीरंगम् से छद्‌मवेष में अपने अनुयायियों के साथ जंगल के रास्ते से छुपते हुए यादवाद्रि में जाकर 12वर्ष तक रहे, 12वर्ष बाद कृमिकण्ठ की मृत्यु को सुनकर श्रीरामानुजाचार्य उसी प्रकार प्रसन्न हुए जिस प्रकार वैदेही रावण मरण के समाचार सुनकर हुई थी। उपरोक्त संकट से मुक्ति पाने के लिये ''अभतिस्तव'' लिखा। (प्रपन्नामृत) उपरोक्त शिवद्रोहादि से भी सिद्ध होता है कि चतु:सम्प्रदाय में परिगणि श्रीसम्प्रदाय से रामानुजियों का कोई लेना देना नहीं है।

अधिकांश इतिहासकारों एवं श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के ऊपर स्वतन्त्र शोधकर्ताओं के द्वारा बहुत बड़ी भूल की गयी है। इन सभी लोगों ने एक दूसरे के द्वारा की गई कल्पनाओं का सहारा लेकर अपने-अपने शोध ग्रन्थ एवं इतिहास के ग्रन्थों में श्रीरामानन्द सम्प्रदाय को श्रीरामानुज सम्प्रदाय का अनुवर्ती लिख दिया है। इसके लिये ये लोग भक्तमाल में परम्परा खोजते हैं, जबकि ऐसा नहीं है। भक्तमाल में भक्तों का चरित्र है।

हाँ गड़बड़झाला करने वालों ने रामानन्द पद्धितिप्रताप अवनि अमृतह्व्य अवतरयों की जगह रामानुज पद्धित को लेकर रामानुजानुवर्ती बताने वालों का छन्दशास्त्र के नियमों का आलोकन करने से पता लग जायेगा कि रामानुज अशुद्ध है। वाराणसी ठाकुर प्रसाद एण्ड सन्स बुक सेलर द्वारा प्रकाशित भक्तमाल में रामानन्द पद्धिति ही लिखा है जिसमें वारणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय अनुसंधान विभागाध्यक्ष पं.बलदेव उपाध्याय की सम्मति है। जिसकी भूमिका परममनीषी डॉ. रामतक्याजी शर्मा ने लिखी है जिसका संशोधन श्रीजानकीदासजी ने श्रीरामबल्लभाशरणजी महाराज के भावों के अनुसार किया है।

घोटालों वाली जितनी भी गुरु परम्परा मिली हैं इनमें से सभी परम्पराओं में श्रीबोधायन वृत्तिकार सम्प्रदायिक नाम (श्रीपुरुषोत्तमाचार्य) के ऊपर से और श्रीरामानुजाचार्य के मध्य में रामानुजीय आचार्यों की नामावली जोड़ी गयी। अब आप देखें श्री श्रीपुरुषोत्तमाचार्य का कार्यकाल भिन्न-भिन्न मतों से ईस्वी सन् की

पांचवी शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी पूर्व तक विद्वान लोगों ने स्वीकारा है। उन श्री श्रीपुरुषोत्तमाचार्य के लगभग 2000वर्ष बाद जन्म लेने वाले श्रीरामानुजाचार्यजी को उनके 7-8 पीढ़ी पहले बिठाया गया है। इसी प्रकार वोपदेव नाथमुनि जो कि श्रीज्वालाप्रसाद के द्वारा रचित ''तिमिर भाष्कर'' के अनुसार श्रीरामानन्दाचार्य के समकालीन हैं। (श्रीसम्प्रदाय रक्षास्वामी भगवताचार्य) उन्हें स्वामी श्रीरामानन्दाचार्य से 27-28 पीढ़ी ऊपर स्थापित किया गया। इसी प्रकार श्रीवेंकटनाथ वेदान्ताचार्य का और श्रीलोकाचार्य ये दोनों विद्वान भी संस्कृत साहित्यविमर्श लेखक कविराज श्रीमदाचार्य पं. क्षिजेन्द्रनाथ शास्त्री के अनुसार श्रीरामानन्दाचार्य के किंचित् समकालिक ही है। इन्हें भी आचार्य श्री से 16 और 20पीढ़ी ऊपर का आचार्य लिखा गया। श्रीबरबर मुनि जिनका जन्म श्रीरामानन्दाचार्यजी के जन्म से लगभग 71वर्ष बाद हुआ है उन्हें कहीं 14, कहीं 15 पीढ़ी पूर्व का आचार्य बताया गया है। और देखें श्रीरामानुज सम्प्रदाय में श्रीरामानुजाचार्य से लेकर श्रीबरबर मुनि तक मात्र नव पीढ़ियां ही हैं। तब इतने ही समय में श्रीरामानुजाचार्य से श्रीरामानन्दाचार्य तक कहीं 21, कहीं 23 पीढ़ियां कैसे बीत जायेंगी? ये सब विचारणीय बिन्दु हैं। यदि इतिहासकार एवं शोधकर्ता उपरोक्त त्रुटियों से भरपूर बिन्दुओं को समझ लेते तो वे कभी भी श्रीरामानन्दाचार्यजी को श्रीरामनुजानुवर्ती लिखने का दु:साहस नहीं करते। इसी प्रकार शोधकर्ता एवं इतिहासकार लिखते हैं कि जब से रामानन्दियों से रामानुज से भिन्न स्वतन्त्र सम्प्रदाय सिद्ध करने का आन्दोलन चला तब से श्रीशब्द से लक्ष्मी का अर्थ न लेकर सीता अर्थ लिखा जाने लगा। **श्रीरामानन्द सम्प्रदाय तथा हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव** पृष्ठ 237 ये भी इन लोगों की महान् भूल है क्योंकि इन्होंने स्वामी श्रीरामानन्दाचार्यजी समकालिक मुस्लिम विद्वान मौलाना रशीदुद्दीन के द्वारा लिखी ''तजकीरतुलफुतरा'' में वर्णित स्वामीजी की महिमा को नहीं देखा, जिसमें स्पष्ट लिखा है कि इनका (श्रीरामानन्दजी) श्रीसम्प्रदाय है ये श्रीजानकीजी को श्री कहते हैं। श्रीजानकीजी ही श्रीराममन्त्र की ऋषि है। इन लोगों के भक्तमाल को भी सही ढंग से नहीं देखा अन्यथा ऐसा नहीं कहते वहाँ स्पष्ट लिखा है कि ''श्रीसम्प्रदाय सिय सिन्धुजा रच्यो भक्तिवितान''। अर्थात् श्रीसम्प्रदाय की दो धारायें हैं। श्रीसीताजी और दूसरी श्रीलक्ष्मीजी जिन्होंने भक्ति का चन्दोवा ताना।

वस्तुतः चतु:सम्प्रदाय में परिगणित श्रीसम्प्रदाय सीताजी वाला ही है।

किन्तु श्रीशठकोपादि से प्रचलित नारायणोपासना जिसका कोई सम्प्रदाय नहीं था अपितु **''कलौखलु भविष्यन्ति नारायण परायणाः''**। इस भागवतोक्ति के अनुसार श्रीनारायणोपासक समूह को श्रीरामानुजाचार्य के कार्यकाल में सम्प्रदाय का रूप मिलने का गौरव प्राप्त हुआ और यह संघ श्रीरामानुज सम्प्रदाय हो गया। श्रीनाभाजी के काल में ये लोग यहाँ पर श्रीसम्प्रदाय में एकीभाव को प्राप्त हुए इससे श्रीनाभाजी ने उपरोक्त पंक्ति लिखी।

अतः अब मेरा इतिहासकारों एवं श्रीरामानुजीय बन्धुओं से निवेदन है कि उपरोक्त आचार्यों की काल गणना पर विचार करके श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के यथार्थ को समझ कर अपने-अपने स्थान पर रहे, पुरानी बिगड़ी हुई परम्परा के सहारे श्रीरामानन्द सम्प्रदाय को श्रीरामानुजानुवर्ती बताने का पुनः दुःसाहस न करें अन्यथा जैसे महाकुम्भ उज्जैन के 1921 ईस्वी वाले शास्त्रार्थ में धूल चांटनी पड़ थी वैसे ही पुनः मुँह की खानी पड़ेगी। यह लेख मैंने किसी को कष्ट पहुंचाने की दृष्टि से नहीं लिखा है। तथ्यों के साथ सत्य को स्वीकार करने हेतु लिखा है। हो सकता है कि सत्य का प्रतिपादन करने में कहीं कठोर शब्दों का प्रयोग हो गया हो तो विद्वज्जन मुझे सत्याग्रही समझ कर श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजी की चौपाई **जो बालक कह तोतरि बाता। सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता।।** के अनुसार क्षमा करेंगे।

''श्रीरामानन्द सम्प्रदाय''

कई इतिहासकार कहते हैं कि श्रीरामानन्दाचार्यजी ने श्रीरामानुजाचार्य से अलग हटकर युगधर्मानुसार श्रीराम रूप को अपना उपास्य, ध्येय और ज्ञेय बनाया। वह बिल्कुल वाह्यात कोरी कल्पना शास्त्र विरुद्ध है। वस्तुतः श्रीसीताजी से प्रवर्तित श्रीसम्प्रदाय में श्रीरामोपासना अनादिकाल से चली आ रही है। जिसके प्रमाण इतिहास पुराण संहिता आदि ग्रन्थों में प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। इसीलिये सूतजी कहते हैं कि-

नतत्पुराणों नहिं यत्र रामो यस्यां न रामो नहि संहिता सा।

स नेतिहासो नहि यत्र रामः काव्यं न तत्स्यान्नहि यत्र रामः।।

इस प्रकार के अनेकानेक प्रमाणों के संग्रहरूप ग्रन्थरत्न भी महापुरुषों के द्वारा रचे गये जो उपलब्ध हैं। जैसे कि **श्रीरामपरात्वम्, श्रीसीतारामनाम प्रताप प्रकाश, श्रीनवरत्न संग्रह, श्रीरामभक्तपरम वैदिक सिद्धान्त** आदिक हैं इनके

अतिरिक्त अनेक स्वतन्त्र आर्ष ग्रन्थों में श्रीराम भक्ति का वर्णन है जैसे **अगस्त संहिता, वाल्मीकि संहितादिक** प्राचीन ग्रन्थ तो केवल रामोपासना का ही वर्णन करते हैं। वृहद् हारीति स्मृति में ''षडक्षंर दासरथेस्तारकं ब्रह्मकत्थ्ये से ....ब्रह्म विष्णुसा, रूद्रश्च अगस्ताद्य महर्षय:'' तक श्रीराममन्त्र राज की महिमा के वर्णन के साथ बालखिल्यादि मुनि ब्रह्मा–विष्णु–महेश, कार्तिकेयादि देवताओं, विश्वामित्र अगस्तादि ऋषि इसी मन्त्र के प्रभाव से परम प्रतापी बने ऐसा वर्णन है।

उपरोक्त वाक्यों की सत्यता शिवसिंहता के भव्योत्तर खण्ड में वर्णित ''श्रीरामार्चामहात्म्य'' से सिद्ध होती है। जिसमें श्रीब्रह्माजी के द्वारा रामार्चन करने का वर्णन है। सतयुग के भक्त श्रीप्रहलादजी स्वयं कहते हैं कि **''रामनाम जपतां कुतो भयम्''** इत्यादि वचनों से श्रीरामोपासना अनादि वैदिक उपासना है। इसी उपासना पद्धति का ही दूसरा नाम ''श्रीसम्प्रदाय' है जिसकी अविछिन्न परम्परा का वर्णन ''मैथिलीमहोपनिषद्'' में इस प्रकार है **इममेव मनुं पूर्वं साकेतपतिर्मामवोचत् अहं हनुमते ममप्रियाय पियतराय सवेद वेदिने ब्रह्मणे। सवशिष्ठाय स परामशय स व्यासय स शुकाय इत्यादि।**

इस प्रकार श्रीसम्प्रदाय के माध्यम से श्रीरामभक्ति और राममन्त्र का प्रचार इस धराधाम पर अनादि काल से चल रहा था। इसका प्रचार दक्षिण में महर्षि अगस्तजी ने किया जो अनवरत चल रहा था। इससे सिद्ध होता है कि उत्तर और दक्षिण सर्वत्र श्रीराम भक्ति फैली हुई थी। नृसिंह पुराणादि में प्रहलादादि की रामभक्ति से यह सिद्ध होता है कि रामभक्ति सतयुगादि में भी थी। इस राममन्त्र की ऋषि श्रीजानकीजी है इसलिये इस सम्प्रदाय को श्रीसम्प्रदाय कहते हैं। आज किसी भी साधु से कोई भी पूछेगा कि तुम्हार कौनसा सम्प्रदाय है? तो उसका उत्तर होगा श्रीसम्प्रदाय। पुन: प्रश्न होगा कौन श्री? तो उत्तर होगा श्रीदाशरथीलाल (जानकीजी)। श्रीसम्प्रदाय (श्रीरामानन्द सम्प्रदाय) की शास्त्रार्थ विजयी सर्वमान्य गुरु परम्परा इस प्रकार है। श्रीरामजी, सीताजी, हनुमाजी, ब्रह्माजी, वशिष्ठजी, पाराशरजी, व्यासजी, शुकदेवजी, विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त परक ''वेदान्त दर्शन'' पर बोधायनवृत्ति के रचियता श्रीपुरुषोत्तमाचार्य (बोधायनाचार्य), श्रीगंगाधराचार्य, श्रीसदानन्दाचार्य, श्रीरामेश्वरानन्दाचार्य, श्रीद्वारानन्दाचार्य, श्रीदेवानन्दाचार्य, श्रीश्यामानन्दाचार्य, श्रीश्रुतानन्द, श्रीचिदानन्दाचार्य, श्रीपूर्णानन्दाचार्य, श्री श्रियानन्दाचार्य, श्रीहर्यानन्दाचार्य,श्रीराघवानन्दाचार्य एवं प्रस्थान त्रयी पर आनन्द

भाष्य के कर्ता हिन्दु धर्मोद्धारक जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराज,आपके शिष्य श्रीअनन्तानन्दाचार्य जिनके कृपा पात्र श्रीकृष्णदासजी पयहारीजी महाराज जिन्होंने सतयुग के परम रामोपासक गालव ऋषि की तपस्थली गलता तीर्थ से विलुप्त हुई वैष्णवता का पुनरोद्धार किया।

श्रीरामानुज सम्प्रदाय

श्रीमद्भागवत महापुराण में लिखा है कि-

कलौ खलु भविष्यन्ति नारायणा परायणा।
क्वचित् क्वचिन्महाराज द्रविडेषु च भूरिशः।।
ताम्रपर्णी नदी यत्र कृतमाला पयस्विनी।
कावेरी च महापुण्या प्रतीची च महानदी।।

(11/5/38-40)

अर्थात् कलयुग के आरम्भ में नारायणोपासक संत भक्तजनों का प्रादुर्भाव होगा। जिनकी संख्या अन्यत्र कहीं-कहीं दिखाई देगी,किन्तु द्रविड़ देश की ताम्रपर्णी, कृतमाला,पयस्विनी,कावेरी और प्रतीची आदि नदियों के क्षेत्र में बहुतायत संख्या में होगी। श्रीरामानुज सम्प्रदाय के पूर्व सन्तों का जन्म उपरोक्त नदियों के क्षेत्र में ही हुआ।

आल्लवार शिरोमणि शठकोप स्वामी ताम्रपर्णी नदी तट पर स्थित तिरुक्कुरूकूर नाम की पावन भूमि में अवतरित हुए। ऐसी जनश्रुति है कि श्रीकृष्ण भगवान् के स्वधाम गमन के लगभग सवा महिने बाद इनका इस धराधाम पर प्रादुर्भाव हुआ। श्रीमूधर कवि को आपके द्वारा तत्व बोध हुआ,इन्हीं की परम्परा ने संत शठकोप की वाणी के साथ अपने को जोड़े रखा था। इनके पश्चात् कई शताब्दियों के बाद श्रीनाथमुनि ने योग साधना के द्वारा शठकोपजी का नित्यविभूति भगवद्धाम से आह्वान किया,जिसमें श्रीशठकोपजी ने श्रीनाथ मुनि को उपदेश देकर भगवद्दर्शन की वैष्णव परम्परा को उज्जीवित किया। दक्षिण भारत का श्रीरंगनाथ धाम उभय वेदान्त का केन्द्र बना जिसमें संस्कृत एवं द्रविड़ वेदान्त जो कि आलवार संतों की वाणी के रूप में प्रतिष्ठित था। उभय वेदान्त में श्रीनाथ मुनि के उत्तराधिकारी आचार्य पुण्डरीकाक्ष इनके श्रीराम मिश्र तथा श्रीराम मिश्र के उत्तराधिकारी श्रीयामुनाचार्यजी हुए। जिन्होंने अपनी प्रतिभा से एक राज्य का युवराज पद तक

प्राप्त कर लिया किन्तु आचार्य श्रीराम मिश्र की दिव्य प्रेरण से श्रीरंगधाम में उभय वेदान्त का प्रधान आचार्यत्व स्वीकार किया। श्रीयामुनाचार्यजी के प्रधान शिष्य आचार्य महापूर्ण हुए और इनके शिष्यत्व का गौरव शेषावतार श्रीरामानुजाचार्यजी को प्राप्त हुआ।

आचार्य यामुनाचार्य ने उभय वेदान्त के पृथक–पृथक विभाग करके भिन्न–भिन्न शिष्यों को अधिकारी बनाया। किन्तु श्रीरामानुजाचार्यजी ने सम्पूर्ण वेदान्त के ज्ञान को एकत्रित किया,जिसके परिणाम स्वरूप आप इस नारायणोपसना वाले श्रीवैष्णव परम्परा के प्रधान आचार्य हुए। पूर्व में बिखरी हुई इस उपासना पद्धति का आपसे ही श्रीरामानुज सम्प्रदाय के रूप में प्रादुर्भाव हुआ। इससे पूर्व सम्प्रदाय की कल्पना ही नहीं थी। जैसा कि–

श्रीरामानुज संप्रदाय पदवी भाजां चतुस्सप्तति:,
श्रीमद्वैष्णव भूमृतां गुणभ्रतां सिंहासनस्थायिनाम्।
अध्यक्षत्वमुपेयिवांसमतुलं श्रीमन्नृसिंहाज्ञया,
प्रांचंवणशठकोपसंयमिधराधौरेयमीडीमहि।।

यहाँ पर श्रीरामानुजाचार्यजी की प्रेरणा से 74पीठों की स्थापना के बाद पीठाधिपतियों के साथ श्रीरामानुज सम्प्रदाय का संगठन बनने की बात है न कि श्रीसम्प्रदाय ही रामानुज सम्प्रदाय बना ऐसा वर्णन है इसलिये बिखरी नारायणी उपासना ही श्रीरामानुज सम्प्रदाय के रूप में प्रकट हुई और श्रीरंगनाथधाम श्रीरामानुज सम्प्रदाय का केन्द्र बना। उस समय यति सार्वभौम श्रीरामानुजाचार्य के सानिध्य में सात सौ संन्यासी, 74पीठाधिपति और असंख्य वैष्णव भक्त रहते थे। इन 74पीठों की परम्परा श्रीरामानुजाचार्य तक एक ही है। इसके बाद विविध परम्परायें चली तथा वेदान्त की दो धारायें हुई। बडकलै (उत्तर कला) अर्थात् संस्कृत वेदान्त और तेन्कले (दक्षिण कला) अर्थात् द्राविड़ वेदान्त। बडकलै वर्ग श्रीवेदान्त देशिक की परम्परा से था तथा तेन्कलै वगे श्रीबरवर मुनि की परम्परा से सम्बन्धित है।

श्रीरामानुज सम्प्रदाय में विशेष ध्यान देने की बात यह है कि इनके द्वारा स्थापित 74पीठों की परम्परा गृहस्थाश्रमी है। इसलिये श्रीरामानुज सम्प्रदाय की पीठों का आचार्य किसी भी आश्रम का हो सकता है। लेकिन गृहस्थी पीठों में वंश परम्परा चलती है जबकि विरक्तों में शिष्य परम्परा का व्यवहार होता है।

श्रीरामानुज सम्प्रदाय में श्रीशठकोपजी संन्यासी थे इन तक जाने वाली परम्परा में

श्रीयामुनाचार्य, श्रीरामानुजाचार्य, श्रीगोविन्दाचार्य, वेदान्ती स्वामी और ब्रह्मतन्त्र स्वतन्त्र स्वामी ये सभी संन्यासी थे। श्रीबरवर मुनि भी संन्यासी थे, श्रीलोकाचार्य नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे। इनके जितने भी प्रधान मठ हैं, उन सभी में चतुर्भुज भगवान् की उपासना है। जैसे अहोविल मठ में श्रीलक्ष्मी नृसिंह भगवान् है। परकाल मठ में श्रीलक्ष्मी हयग्रीव, श्रीतोताद्रि मठ में श्रीवरमंगला देवी समेत श्रीदेवनायक भगवान् उपास्य हैं।

गीता प्रेस गोरखपुर से निकलने वाली कल्याण नामक पत्रिका के 31वें वर्ष का विशेषांक 'तीर्थांक' में 'अष्टोत्तरशत दिव्य देश' पृष्ठ संख्या 627 से 646 एवं पृष्ठ संख्या 686 से 693 तक ''श्रीरामानुज सम्प्रदाय के पीठ एक अध्ययन'' के लेखक स्वामी श्रीराघवाचार्यजी महाराज हैं। इसी प्रकार ''विशिष्टाद्वैत दर्शन'' नामक आपका लेख ''भारत साधू समाज स्मृति ग्रन्थ'' ईस्वी सन् 1962 के पांचवें खण्ड के पृष्ठ संख्या 7–9 तक भगवान् बोधायन(पुरुषोत्तमाचार्य) को ही ''विशिष्टाद्वैत दर्शन'' का जनक मानकर उन्हीं के अनुसार श्रीभाष्य को लिखने की श्रीरामानुजाचार्य के द्वारा प्रतिज्ञा की गयी है। इससे सिद्ध होता है कि श्रीरामानुजाचार्य से पूर्व के वेदान्ती भी ''विशिष्टाद्वैत दर्शन'' को मानते थे। आपने कांची को संस्कृत वेदान्त का तथा रंगधाम को द्राविड़ वेदान्त का केन्द्र होना लिखा है। कांची का श्रीरंगनाथ धाम से उत्तर होने के कारण कांची को बडकलै एवं श्रीरंगम् को तेन्कलै की शाखा लिखा गया है।

श्रीरामानुज सम्प्रदाय की श्रीबरवर मुनि पर्यन्त तक की गुरु परम्परा ''श्रीत्रिदण्डी व्याख्यामाला'' द्वितीय भाग श्रीओंकारमल सोमाणी मेमोरियल पब्लिक ट्रस्ट बम्बई द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ के अनुसार इस प्रकार है। इस ग्रन्थ में लिखा है कि निम्नलिखित श्लोक श्रीमद्विष्वक्सेनाचार्य श्रीत्रिदण्डी स्वामीजी के द्वारा ध्यान में कहे गये हैं। श्लोक निम्नांकित प्रकार से हैं–

तपस्येमासि रोहिण्यां तटे सह्यभुवः स्थितम्।
श्री रंगशायिनं बन्दे सेवितं सर्वदेशिकैः॥1॥

फाल्गुनोत्तर फाल्गुन्यां श्रियमाश्रये।
विष्णोर्दिव्यपदाम्भोजघटकां तत्पदाश्रिताम्॥2॥

तुलांगतेदिनकरे पूर्वाषाढ़समुद्धवम्।
पद्मापदाम्बुजासक्तं सेनाधिपमहं भजे।3॥

बृषभेतु विशाषायां कुरूकापुरिकारिजम्,
पाण्ड्यदेशे कलेरादौ शठारिंसैन्यपं भजे॥4॥

ज्येष्ठ मासे ह्यनुराधाजातं नाथमुनि श्रये।
य: श्रीशठारे: श्रुतवान् प्रबंधमखिलं गुरो:॥5॥

मीनमासे सरोजाक्षं कृत्तिकाजातमाश्रये।
नाथयोगिदाम्भोजद्वन्द्वप्रवणमानसम्॥6॥

कुम्भे मासि मधोद्भूतं राममिश्रमुपास्महे।
पुण्डरीकाक्षपादाब्जसमाश्रयणशलिनम्॥7॥

शुचौ मास्युत्तराषाढ़े जातं यामुनदेशिकम्।
श्रीराममिश्र पादाब्जं श्रयन्तमहमाश्रये॥8॥

धनुर्ज्येष्ठासमुद्भूतं यामुनांध्रिसमाश्रितम्।
महापूर्णयतीन्द्रार्य मन्त्र रत्न प्रदं भजे॥9॥

मेषार्द्रासंभवं विष्णोर्दर्शन स्थापनोत्सुकम्।
तुण्डीर मण्डले शेषमूर्ति रामानुजं भजे॥10॥

पुष्येपुनर्वसुदिने जातं गोविन्द देशिकम्।
रामानुजपदाम्भोजराजहंस समाश्रये॥11॥

माधवेमास्यनुराधाजातं भट्टार्यदेशिकम्।
गोविन्द गुरूपादाब्ज भृंगराजमहं भजे॥12॥

फाल्गुनोत्तर फाल्गुन्यां जातं वेदान्तिनं मुनिम्।
श्रीपराशरभट्टाचार्यपादरेखामयं भजे॥13॥

कार्तिके कृतिकाजातं कलिजिद्दासमाश्रये।
वेदान्तिमुनिपादाब्जश्रितं सूक्तिमहार्णवम्॥14॥

ज्येष्ठे स्वाति समुद्भूत्तं जगदार्यं पदाश्रयम्।
उदकप्रतोलितनयं कृष्णपादं सामश्रये॥15॥

तुलायां श्रवणे जातं लोकार्यमहमाश्रये।
श्रीकृष्णपादतनयं तत्पदाम्भोज षट्पदम्॥16॥

विशाखायां समुद्भूतं वैशाखेमास्यमहं भजे।
श्री शैलेशगुरुं लोकदेशिकाङ्घ्रिसमाश्रित्॥17॥

तुलामूलार्कसम्भूतं श्रीशैलेशपदाश्रयम्।
श्रीशेषांशोभ्दवं बन्दे रम्यजामातरं मुनिम्।।18।।

परम्परा इस प्रकार है–श्रीमन्नारायण–जगज्जननी श्रीलक्ष्मीजी, श्रीविश्वक्सेन, श्रीशठकोप, श्रीनाथमुनि, श्रीपुण्डरीकाक्ष, श्रीराममिश्र, श्रीयामुनाचार्य, श्रीमहापूर्णाचार्यजी एवं श्रीरामानुजाचार्यजी महाराज, श्रीगोविन्दाचार्य, श्रीपराशर भट्ट्ट, श्रीवेदान्ती स्वामी, श्रीकलिबैरीदास स्वामी, श्रीकृष्णपादाचार्य, श्रीलोकाचार्य, श्रीशैलेश स्वामी, श्रीबरवर मुनि।

गलता तीर्थ व गलता गद्दी–

श्रुति स्मृति पुराण संहिता आगम इतिहास नाटक आदिक सत्शास्त्रों में वर्णित श्रीरामोपासना की सरस रस धारा सृष्टि चक्र के आदि काल से अनवरत बहती हुई ब्रह्मादि त्रिदेवों के साथ अनेक ऋषि महर्षियों राजा–महाराजाओं के अन्त:करण को आप्लावित करती हुई जन–साधारण के हृदयों को अद्यावधि ही नहीं, युग–युगान्तर, कल्प कल्पान्तर पर्यन्त अपनी पांचों विधाओं के द्वारा भक्तजनों के हृदयों को सरस करती रहेगी।

इसी क्रम में श्रीराम भक्ति की वात्सल्य विद्या के उपासक ब्रह्मर्षि विश्वामित्र हुए हैं, जिनके बारे में **सनत्कुमार संहिता में कहा गया हैं–**

रामंरत्नकिरीट कुण्डलयुक्तं केयूरहारान्वितं,
सीतालंकृतवामभागममलं सिंहासनस्थंविभुम्।
सुग्रीवादिहरीश्वरै:सुरगणै: संसेयमांसंपदा,
विश्वामित्र पराशरादि मुनिभि: संस्तूयमानं प्रभुम्।।

महर्षि श्रीपाराशरजी तो श्रीराम मंत्र की गुरु परम्परा में छठें आचार्य हैं ही, लेकिन श्रीविश्वामित्र भी परम रामोपासक है। श्रीवाल्मीकीय रामायण के इस श्लोक से आपके श्रीराम वात्सल्य से पूरित हृदय का दर्शन होता है–

कौशल्य सुप्रजाराम पूर्वा सन्ध्या प्रवर्तते। उत्तिष्ठ नरशर्दुल कर्तव्यं दैवमाहिन्कम्।।

(बा.रा.2/2/2)

अर्थात् हे कौशल्यानन्दन वत्स श्रीराम! उठो, प्रात: कालिक संध्या का समय हो गया है। इसलिये नित्य क्रिया से निवृत्त होकर संध्या जप तर्पणादिक कार्य करें।

ऐसे पर तपस्वी एवं श्रीराम के प्रति वात्सल्य भाव से पूरित हृदय वाले ब्रह्मर्षि श्रीविश्वामित्रजी परम रामोपासक थे। जिनके द्वारा रचिक अनेक स्त्रोत रामभक्तों के कण्ठ हार बने हुए हैं। जैसे कि श्रीरामरक्षा स्त्रोत, श्रीराम दुर्ग, श्रीरामरक्षामालामन्त्र आदि हैं। आपके परम प्रतापी शिष्य महर्षि गालवजी ने आपके सानिध्य में रहकर 10हजार वर्ष तक वेद-वेदांग, ज्ञान-कर्म, भक्त आदि का ज्ञानार्जन किया महाभारत में आप के प्रभाव का वर्णन उद्योग पर्व में अध्याय 106 से लेकर 119 तक वर्णन किया गया है।

वहां पर वर्णन है कि एक बार श्रीधर्मराजजी ने विश्वामित्र की परीक्षा लेने के लिये श्रीवशिष्ठजी का रूप धारण करके भोजन की याचना की जिसके लिये श्रीविश्वामित्रजी चरु का निर्माण करना चालू किया, किन्तु किंचित विलम्ब हो जाने के कारण उन्होंने दूसरे ऋषि के यहां भोजन कर लिया और विश्वामित्रजी को अपने भोजन कर लेने का समाचार देकर वहां से चले गये, किन्तु विश्वामित्रजी ने भोजन सिर पर रखकर उनकी प्रतिक्षा करते हुए 100साल तक खड़े रहे। उस समय महर्षि गालव ने आपकी अनवरत् सेवा की 100वर्ष व्यतीत होने पर वशिष्ठ रूपी श्रीधर्मजी महाराज ने आकर भोजन ग्रहण किया और विश्वामित्र को यह कहकर प्रस्थान कर गये कि मैं तुम से बहुत प्रसन्न हूँ इससे विश्वामित्रजी बहुत प्रसन्न हुए।

उसी समय विद्याध्ययन के उपरान्त गालवजी ने गुरु दक्षिणा देने के लिये आपसे प्रार्थना की कि हे गुरुदेव भगवान्! आपको क्या गुरु दक्षिणा दूँ? आप तो गालवजी की सेवा से अत्यन्त प्रसन्न थे अत: आपने उन्हें बारम्बार जाने के लिये कहा तो गालवजी ने दक्षिणा का महत्व सुनाते हुए कहा-

दक्षिणाभिरूपेतं हि कर्म सिद्धयति मानद।
दक्षिणानां हि दाता वै अपवर्गेण युज्यते।।

हे मानद गुरुदेव! दक्षिणा युक्त कर्म ही सफल होता है। दक्षिणा देने वाले व्यक्ति ही सिद्धि और अपर्ग को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार बारम्बार कहने पर विश्वामित्र को किंचित क्रोध आ गया और आपने कह दिया जाओ देर मत करो शीघ्रातिशीघ्र 800 श्यामकर्ण घोड़े ले आओ। यह सुन कर गालवजी अत्यन्त दुःखी हो गये कि इस दुर्लभ गुरु दक्षिणा की व्यवस्था कैसे होगी? ऐसा चिन्तन करते हुए आपको शारणगत वत्सल भगवान् की शरणागति का स्मरण हुआ। क्यों

सब की गति भगवान् ही है। तब आपने कहा मैं अविनाशी भगवान् श्रीराम का प्रणत भाव से दर्शन करना चाहता हूँ।

हे मेरे नाथ! आप ही ऐसी दुर्लभ गुरु दक्षिणा को चुकाने का मार्ग दिखायेंगे।

एवं उक्ते सखातस्य गरुड़ों विनितात्मज:।
दर्शयामास तं प्राह संहृट: प्रिय काम्यया।।

इस प्रकार भगवत शरणागत स्वीकार करते हो, भगवान् के परम सेवक सखा विनिता नन्दन श्रीगरुड़जी ने आकर श्रीरामोपासक गालवजी का हित करने के लिये उनसे बोले हे महर्षि गालव! आप हमारे सुहृद है और मेरे सुहृदों के भी आप प्रिय है। आप चिन्ता न करे। हमारे सबसे बड़े वैभव से युक्त इन्द्र के छोटे भाई वामनजी हैं। मैंने उनसे आपके बारे चर्चा कर रखी है। इसके बाद गरुड़जी ने गालवजी से चारों विद्याओं का वर्णन कर पूछा कि मैं किस दिशा में आपको लेकर चलूँ? तब गालवजी ने पूर्व दिशा की ओर ले चलने के लिये कहा।

मार्ग में आप श्रीगरुड़जी के वेग से व्यथित हो, गुरु दक्षिणा देने में अपने को असमर्थ समझ कर प्राण त्यागने की सोचने लगे, तब श्रीगरुड़जी ने पुन: श्रीगालवजी को समझाया और फिर दोनों ऋषभ पर्वत पर निवास करने वाली शाण्डिली तपश्विनी के दर्शन किये। उनका आतिथ्य स्वीकार करने के पश्चात् शाण्डिली की एकान्तिक दशा से ऊपर विचार करने से गरुड़जी के पंख समाप्त हो गये। इस स्थिति को देखकर दोनों दु:खी हुए। तब शाण्डिली ने आचार की महत्ता बता कर गरुड़जी से बोली–

तदायुष्मन् खगपते यथेष्टंगम्यतामित:।
न चतेगर्हणीयाहं गर्हितव्या: स्त्रिय:क्वचित्।।

हे गरुड़जी! अब आप अपने अभीष्ट स्थान को जावे,आज से आप कभी भी मेरी निन्दा नहीं करना। मेरी ही क्या किसी भी स्त्री की निन्दा करना उचित नहीं हैं। इसके पश्चात् गरुड़जी महर्षि गालव को प्रतिष्टापुर के राजा ययातिजी के यहां ले गये। वहां आपका परिचय कराकर गुरु दक्षिणा के रूप में अपने गुरुदेव विश्वामित्र को 800 श्यामकर्ण घोड़े प्रदान करने की बात महाराज ययाति से कही।

तब राजा ययाति ने अपनी माधवी नामक कन्या को उन्हें सम्हलाकर श्याम कर्ण घोड़ों को प्राप्त करने की युक्ति बता दी और महर्षि गालव ने उस कन्या के

माध्यम से विश्वामित्र के द्वारा चाही गई गुरु दक्षिणा देकर माधवी की प्रशंसा करके,श्रीगरुड़जी से अनुमति लेकर पुन: कन्या को ययातिजी महाराज को सम्हला कर संसार की निस्सारता को जानकर श्रीगालवजी नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर तपस्या के लिये अत्यन्त उपयोगी परम एकान्त चारों तरफ से अरावली पर्वत श्रृंखलाओं से घिरे हुए अत्यन्त रमणीक सुरम्य इस स्थल को अपने आश्रम का रूप देकर श्रीरामदर्शनार्थ रामनवमी का व्रत करते हुए इसी स्थान पर तपस्या में लीन हो गये। जो आगे जाकर गालव आश्रम के नाम से विख्यात हुआ।

कालान्तर में जब आपको जल की आवश्यकता हुई तो जिस प्रकार सूर्यवंशी राजा भागीरथजी ने गंगाजी की आराधना करके उनको पृथ्वी लोक पर लाकर अपने पितरों का उद्धार करने के साथ अनन्त काल तक जन सामान्य के उद्धार का मार्ग प्रशस्त कर गये। उसी प्रकार श्रीराम में रमण करने वाले महर्षि गालवजी ने भी लोक कल्याणार्थ श्रीगंगाजी की आराधना करके इस मरुभूमि में गंगा को प्रकट किया तो गालवी गंगा कहलायी। जिसकी पावन जलधारा अद्यावधि यहां के लोगों को पवित्र कर रही है। यहां के लोगों की ऐसी मान्यता है कि सभी तीर्थों की यात्रा करने के बाद यदि गलता स्नान नहीं करते तो तीर्थ यात्रा अधूरी मानी जाती है।

इसलिये सामान्य दिनों की अपेक्षा आज भी एकादशी,अमावस्या,पूर्णिमा और विशेष पर्वो पर यहां अपार भीड़ होती है। इस प्रकार की महिमा से मण्डित श्रीरामोपासक महर्षि गालवजी की तपस्थली गलता तीर्थ अत्यन्त प्राचीनतम तीर्थ है जो कि अपने अप्रतिम प्राकृतिक सौन्दर्य के कारण बड़े-बड़े ऋषि महर्षियों की साधना स्थली बनी। इसी क्रम में यह नाथ सम्प्रदाय के तान्त्रिक श्रीतारानाथ की भी साधना स्थली बनी।

इनके बाद आमेर नरेश श्रीपृथ्वीराज कछवाहा की धर्मपत्नी श्रीबालाबाई के आग्रह पर उनके गुरुदेव श्रीकृष्णदासजी पयहारी सम्वत् 1561 में चैत्रीय नवरात्रों में यहाँ पधारे जो कि जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य के पौत्र शिष्य एवं श्रीअनन्तानन्दाचार्यजी के शिष्य थे। गलताजी की स्थापना के समय 7कुण्ड थे। 1.कदम्ब कुण्ड, 2. यज्ञवेदी कुण्ड, 3. सूर्य कुण्ड, 4. गोपाल कुण्ड, 5. लाल कुण्ड, एक कुण्ड के निकट हनुमानजी का मन्दिर शिव मन्दिर बन गया इसकी सीध में दक्षिण की तरफ एक और कुण्ड है। यहाँ पर श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के 6 मन्दिर बने हैं जिनमें

श्रीसीतारामजी, श्रीरघुनाथजी, श्रीराजकुमारजी, श्रीनृत्यगोपालजी, श्रीविजय गोपालजी एवं ज्ञानगोपालजी की सेवा-पूजा होती है। श्रीकृष्णदास पयहारीजी श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के ऐसे परमप्रतापी आचार्य हुए कि जिनकी परम्परा में श्रीवैष्णव चतु:सम्प्रदाय के संगठन की जो 52द्वारा गद्दियाँ हैं उनमें श्रीरामानन्द सम्प्रदाय(श्री सम्प्रदाय) की 36गद्दियों में से आपकी परम्परा से 18द्वारा गद्दियाँ निकली हैं। जो इस प्रकार से हैं- 1. श्रीकीलद्वारा, 2. श्रीटीलाचार्यजी, 3. श्रीअग्रजी, 4. श्रीलालतुरंगी, 5. श्रीभगवन्नारायण, 6. श्री रामसमनाचार्य जी 7. श्रीरामरंगी, 8. श्रीजंगीजी, 9. श्रीतनतुलसीदासजी, 10. श्रीदेवमुरारी, 11. श्रीदेवभंडगीजी, 12. श्रीमलूकदासजी, 13. श्रीदिवाकरजी, 14. श्रीपूर्ण बैराठीजी, 15. श्रीनाभाजी, 16. श्रीगोविन्दासजी, 17. श्रीहनुमान हठीलेजी, 18. श्रीरामरमानीजी, इसके अतिरिक्त चतु:सम्प्रदाय की प्रधान पीठ लोहागढ़, मंगलपीठ श्रीरामदास औलिया की पीठ मुशिर्दावा आदि कई बड़ी-बड़ी पीठें गलतापीठ से निकली हैं। इतनी ही नहीं श्रीरामस्नेही सम्प्रदाय की सभी पीठे यहीं से निकली है। इस प्रकार की सैकड़ों सिद्ध उपपीठों एवं सहस्त्र मठ मन्दिरों की मूल पीठ श्रीमठ काशी के पश्चात् जयपुर आमेर गलतागद्दी ही श्रीरामानन्द सम्प्रदाय की प्रधान पीठ बनी,जिसके संस्थापक श्रीकृष्णदासजी पयहारीजी हैं,जिनका विस्तृत चरित्र आपके प्रशिष्य श्रीनारायणदास नाभाजी कृत भक्तमाल में हैं। मैं तो यहाँ पर सिर्फ दिग्दर्शन मात्र करा रहा हूँ। आपने बचपन से अपने आहार के रूप में दुग्धपान किया,इसलिये आपका नाम पयहारीजी प्रसिद्धि में आया। आप परम विरक्त महान तपस्वी योगसिद्ध प्राप्त महात्मा थे श्रीरामानन्द सम्प्रदाय में आपको श्रीशत्रुघ्नजी का अवतार माना जाता है। श्रीशत्रुघ्नजी में भागवत सेवा का जो आदर्श था वही आदर्श आप में विद्यमान थे। ऐसी मान्यता है कि आप चिरंजीवी हैं। हिमालय के क्षेत्र में आप विचरण करते हैं। सन्तों से मैंने सुना है कि आप योग दर्शन के सूत्र **जन्मौषधिमंत्रतपस्माधिजासिद्धय:** के अनुसार हिमालय में 60सन्तों के साथ रह कर आकाश में उड़ने की सामर्थ्य प्राप्त करने के लिये औषधि का सेवन कर रहे थे। किन्तु एक दिन की कमी हो गयी थी आपने औषधि नहीं ली,दूसरे सन्त उसी के प्रभाव से आकाश में उड़ गये । तब आपने अन्त में श्रीरामनाम का ही आश्रय लिया और अपने गुरुदेव के कथनानुसार चलकर परमसिद्धि को प्राप्त किया। आपकी गुफा पर जाने वालों की मनोकामनायें आज भी पूरी हो रही हैं।

आपका वर्चस्व राजस्थान ही नहीं अपितु सम्पूर्ण उत्तर भारत के राजा महाराजाओं के साथ जनसामान्य में नेपाल तक था। बीकानेर के राजा लुणकरणजी की पुत्री अपूर्व देवी बचपन में ही आपकी शिष्या हो गई थी, जो बाद में बालाबाई के नाम से प्रसिद्ध हुई। आपका विवाह कछवाहा राजवंश आमेर नरेश श्रीपृथ्वीराजजी के साथ हुआ था। इस प्रकार वो मन्दिर आज भी आमेर किले में है। जयपुर बसने पर चन्द्रमहल में भी श्रीसीताराम दरबार की स्थापना हुई। इससे सिद्ध होता है कि पयहारीजी की इस विरक्त पीढ़ी का प्रभाव जयपुर राजघराने पर सदैव रहा।

देश स्वतन्त्र होने की कगार था उस समय राजघरानों का लोकतन्त्रीय व्यवस्था के तहत भारत में विलय होना था। इससे पहली एक देवीय घटना घटी। किसी दुष्ट ने पयहारीजी प्रदत्त नृसिंह मूर्ति की चोरी कर उसमें से सोना निकाल कर मूर्ति को तोड़कर कुए में डाल दी जो बाद में मिल गयी और पयहारीजी की वाणी नृसिंह ड्योड़ी वाली बात सत्य हो गयी अर्थात् जयपुर राजघराना भी भारत में विलय हो गया। श्रीकृष्णदासजी पयहारी ने परम प्राचीन श्रीरामोपासना की इस उर्वरा भूमि को अपनी गद्दी के रूप में प्रतिष्ठापति करके अपने प्रधान शिष्य कीलदेवजी को यहाँ प्रतिष्ठित किया, इसलिये यह गद्दी श्रीसम्प्रदाय (श्रीरामानन्द सम्प्रदाय) में श्रीकीलजी द्वारा के नाम से विख्यात हुई। श्रीकीलदेवजी महान् श्रीरामभक्त के साथ-साथ परम तपस्वी योगीराज एवं विशिष्टाद्वैत दर्शन के उद्भट विद्वान थे। आज भी आपके द्वारा रचित ग्रन्थ **अध्यासध्वसलेश** रामानन्द वेदान्त की परीक्षा में चलता है। इस द्वारे के साधुओं के स्थान भारत के अलावा जनकपुरधाम नेपाल में भी हैं।

आपकी परम्परा में सभी महन्त परम प्रतापी हुए हैं। उन्हीं में सातवें आचार्य श्रीरामप्रपन्नाचार्यजी हुए जिनका अपरनाम श्रीमधुराचार्य था। श्रीरामानन्द सम्प्रदाय में मधुरोपासना को शास्त्रीय रूप प्रदान किया। आप गलता के पीठाधीश्वर के रूप में गलता में रामलीला का आयोजन करवाते थे। जिसके कारण आपके विरोधियों ने तत्कालीन नरेश सवाई रामसिंह से आपकी शिकायत की परिणामस्वरूप रुष्ठ होकर आप चित्रकूट अयोध्या चले गये। आप संस्कृत के प्राकण्ड पण्डित थे। आपके द्वारा रचित सात महान् ग्रन्थों की चर्चा है जिनमें से **भगवद्गुणदर्पण** नामक ग्रन्थ श्रीरामानन्द दर्शन के पाठ्यक्रम में सम्मिलित है।

अब यहाँ पर विशेष विचारणीय बिन्दु यह है कि श्रीमधुराचार्यजी के शिष्य

श्रीहर्याचार्यजी से गलता पीठ के बोर्ड पर गृहस्थ आचार्य नाम अंकित किया गया है जो सरासर झूठा है। जनता को उस बोर्ड़ के माध्यम से तथाकथित पीठाचार्य के द्वारा धोखा दिया जा रहा है। वस्तुत: श्रीहर्याचार्यजी के पूर्व आश्रम का नाम हीरालाल था आप जयपुर के निकट जाहोता ग्राम के कुलीन वैश्य कुल में उत्पन्न होने से व्यापार करते थे लेकिन आपने अपनी गृहस्थी का परित्याग करके श्रीमधुराचार्यजी से विरक्त दीक्षा लेकर भगवत् शरणागति स्वीकार कर उन्हीं की सेवा में रहने लगे। पूर्वोक्त कथनानुसार जब आपके गुरुदेव चित्रकूट चले गये तो आप भी उनके पास पहुँच गये,किन्तु गुरुजी के समझाने के बाद आप पुन: गलता पधारे तो तत्कालीन महाराज जयपुर ने आपको सन्तों के सानिध्य में ससम्मान कीलदेवजी के द्वारे की इस गद्दी के ऊपर पीठाधिपति के रूप में प्रतिष्ठापित करके साष्टांग दण्डवत कर आपका सम्मान किया। इसके पश्चात् आपने अपने गुरुदेव के द्वारा चलायी गयी रामलीला का आयोजन करते हुए समस्त परम्पराओं का विधिवत् निर्वाह किया। श्रीहर्याचार्यजी के ही दूसरे शिष्य श्रीमाधवदासजी के द्वारा लोहार्गल सीकर जिले में एक पीठ की स्थापना की गयी जो कि वैष्णव चतु:सम्प्रदाय के श्रीमहन्तों में श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के श्रीमहन्त की प्रधान पीठ बनी। आप संस्कृत हिन्दी दोनों भाषाओं के विद्वान थे। आपकी संस्कृत रचना जानकी गीतम् तथा हिन्दी में अष्टयाम और फुटकर पद है। यहाँ पर दूसरा विचारणीय बिन्दु यह है कि गलता जैसी विशिष्ठ द्वाराचार्य की प्रधान पीठ पर वैश्य कुलोत्पन्न श्रीहर्याचार्यजी का बैठना। श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के सिद्धान्त का प्रतिफल था,न कि श्रीरामानुज सम्प्रदाय का। वहाँ तो गद्दी पर बैठना को दूर रहा ब्राह्मणेतर को उनके साथ बैठकर भोजन करने का भी अधिकार नहीं है। कहीं किसी स्थान पर सेवा भी होती है तो भितरिया, बहरिया के भेदों से ब्राह्मणेतर जाति वालों को अलग से पंक्ति में बिठाया जाता है और तो क्या कहूँ ब्राह्मणेतर के साधु उन लोगों को भोजन करते समय दर्शन भी नहीं कर सकते। ऐसा वहाँ पंक्ति में होता है। किन्तु श्रीरामानन्द सम्प्रदाय में ऐसा नहीं है यहाँ पर सभी एक साथ पंक्ति में बैठकर भगवत प्रसाद ग्रहण करते हैं और देखे श्रीरामानन्द सम्प्रदाय की ही देन है कि 36द्वारा पीठों में से कई पीठों के संस्थापक ब्राह्मणेतर रहे हैं जैसे श्रीपीपाजी क्षत्रिय,श्रीकूबाद्वारा पीठ कुमावत,श्रीमलूक पीठ कायस्थ इत्यादि। इसीलिये श्रीहर्याचार्यजी को श्रीकीलदेवाचार्य की पीठ पर बिठाने में किसी को कोई आपत्ति

नहीं हुई। इसी प्रकार गलता पीठ की परम्परा में श्रीजानकीशरणाचार्य श्रीरामाचार्य पर्यन्त विशुद्ध विरक्त परम्परा चलती रही।

लेकिन श्रीसीतारामाचार्यजी के कार्यकाल में श्रीसवाईसिंह के द्वारा अश्वमेघ यज्ञ किये जाने पर,विषयों से विरक्त मन वाले श्रीसीतारामचार्यजी को राजाज्ञा के वशीभूत होकर शादी करनी पड़ी इस घटना का कोई प्रामाणिक उल्लेख नहीं मिलता केवल लोकोक्ति में ही यह बात प्रचलित है। अस्तु जो भी हो, किन्तु आपका विरक्त मन हमेशा वैरागी ही बना रहा जिसके परिणामस्वरूप गलतापीठ की व्यवस्था विरक्तों के समान ही रही। मुझे तो आपके बारे में भी श्रीहर्याचार्यजी की जैसी ही स्थिति दिखाई दी। अर्थात् आपने श्रीरामानन्द सम्प्रदाय की मर्यादा पालन करते हुए अपने पद का त्याग कर श्रीहरिबल्लभाचार्यजी को गद्दी पर स्थापित कर दिया।

इसी प्रकार की स्थिति श्रीहर्याचार्य के कार्यकाल के साथ श्रीहरिशरणाचार्यजी के कार्यकाल पर्यन्त चली। ये सभी विरक्त थे। यदि वे विरक्त नहीं होते तो तथाकथित आचार्य रामोदाराचार्यजी से अवधेशाचार्यजी तक जो गलता की सम्पत्ति का बन्दरबाट चला आ रहा है वे उनके भी कार्यकाल में होता किन्तु ऐसा नहीं हुआ। अपितु वैष्णवभक्त राय गणपतजी के द्वारा सम्वत् 1923 में गलता गद्दी को चांदपोल और गणगौरी बाजार में 35 दुकानें, दो थड़ी, एक नोहरा, गलता ठिकाने को दान किया वह नहीं होता क्योंकि उपरोक्त दान तथाकथित गृहस्थ आचार्यों के कार्यकाल में ही किया गया है। इन आचार्यो के क्रियाकलापों से ये निष्कर्ष निकलता हैं कि ये सभी गृहस्थ जीवन के बाद विरक्त होकर गद्दी की बागडोर को सम्भाले हैं। इनमें किंचित भी परिवारवाद नहीं था। इनका जीवन चरित्र विरक्तों जैसा ही था वरना रामोदाराचार्य से पहले ही गलता पीठ की एक-एक ईंट का बंटवारा हो गया होता। और देखें श्रीहरिशणाचार्यजी का पाँच भौतिक शरीर 25 अक्टूबर, 1937 में छूटा है यदि गृहस्थी परम्परा होती तो 12-17 दिन के बाद किसी न किसी को गद्दी पर प्रतिष्ठापित कर दिया जाता किन्तु ऐसा नहीं हुआ। क्योंकि कोई भी व्यक्ति उपरोक्त महन्तों के परिवार से गृहस्थी छोड़ कर महन्त बनने को तैयार नहीं हुआ। इस कार्य के लिये एक,दो,तीन महीनों तक प्रतीक्षा नहीं की गयी,बल्कि इस कार्य के लिये पांच वर्ष लग गये तब तक कोई भी इसका दावेदार नहीं आया।

इस समय गलता पीठ की बागडोर श्रीहरिबल्लभाचार्यजी के पूर्वाश्रम की पत्नी श्रीमती पार्वती बाई(मांजी साहब) के हाथ में थी, क्योंकि श्रीहरिबल्लभाचार्यजी का शरीर छूटने के पश्चात् श्रीहरिशरणाचार्यजी के कार्यकाल में आप गलता पीठ में आकर स्थाई निवास करते हुए भगवान् की भक्ति में तल्लीन हो गयी,जिससे पीठ की गतिविधियों में आपका पूर्ण हस्तक्षेप स्वीकार्य हो गया था। तत्कालीन महाराज मानसिंहजी माँ साहब का बड़ा आदर करते थे।

इस प्रकार पाँच वर्ष तक प्रतीक्षा करने पर भी जब उपरोक्त महन्तों के परिवार से कोई भी व्यक्ति गृह त्याग कर बाबाजी बनने को तैयार नहीं हुआ तब पार्वती बाईजी ने महाराज सवाई मानसिंह को बुलाकर उनसे मन्त्रणा करके इस गद्दी को पुनः बाल ब्रह्मचारी श्रीकृष्णदासजी पयहारीजी के शिष्य श्रीकीलदासजी की शिष्य परम्परा में अर्थात् कीलद्वार के विरक्त साधु को गलता गद्दी पर बिठाने का विचार किया। जिससे वैष्णवजनों के साथ सन्त,महन्तों एवं गलता से निकली हुई पीठों के पीठाधिपतियों का इस पीठ में सतत् श्रद्धायुक्त आवागमन बना रहे और उनके आवागमन से इस पीठ की प्रतिष्ठा एवं वैभव को पुनः प्रतिष्ठापित किया जा सके।

इस चर्चा के परिणामस्वरूप विज्ञप्ति के माध्यम से सम्पूर्ण भारत के योग्य सन्तों से आवेदन मांगने की योजना बनाई गयी और फिर दिनांक 10.10.1942 को तत्कालीन सरकार की तरफ से विज्ञप्ति निकाली गयी। जिसमें योग्यता के लिये सुयोग्य सदाचारी वैष्णव विद्वान,विशुद्ध ब्राह्मण कुल जन्म होना तथा गलता पीठ के संस्थापक श्रीकृष्णदासी पयहारी के शिष्य श्रीकीलदासजी की परम्परा का होना,श्रीसम्प्रदाय की पूजा पद्धति एवं विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त का ज्ञाता होना आदि के साथ श्रीरामानन्द सम्प्रदाय की जगह अधिकारियों की भूल के कारण श्रीरामानुज की तिंगलशाखा लिखा गया जो गलता था। उपरोक्त योग्यताओं के प्रमाण के साथ रेवेन्यू मिनिस्टर जयपुर स्टेट के पते पर 15.11.1942 तक आवेदन मांगे गये। अधिकारियों की गलती इसलिये लिखा है, क्योंकि अधिकांश अधिकारियों को रामानन्द-रामानुज की परम्पराओं का ज्ञान नहीं होता, क्योंकि मेरे स्थान के संस्थापक श्रीसियारामदासजी रामानन्दी सन्त थे किन्तु उनकी जमाबन्दी में सन्त रामानुंजी लिया है।

इसलिये जिस प्रकार यहां गलती हुई उसी प्रकार वहां पर भी गलती से

ही रामानुज लिखा गया है। इस विज्ञप्ति के द्वारा जितने भी आवेदनकर्ता थे वे सभी श्रीसम्प्रदाय (श्री रामनन्द सम्प्रदाय) के थे, इनमें से एक भी श्रीरामानुज तिंगल का नहीं था, क्योंकि इस पीठ का रामानुजियों से दूर–दूर का कोई भी सम्बन्ध नहीं है। इसलिये किसी भी रामानुजी विद्वान ने आवेदन नहीं किया। अब आवेदनों में से गलता पीठ के निकटतम का चयन करने में (लोहार्गल सीकर) की चार सम्प्रदाय की प्रधानपीठ जो गलता पीठ के आचार्य श्रीहर्याचार्यजी के शिष्य श्रीमाधवदासजी के द्वारा संस्थापित की गयी थी,उस पीठ के पांचवें महन्त श्रीभरतदासजी के विरक्त शिष्य श्रीरामोदाराचार्यजी जिनको लोहार्गल की चार सम्प्रदाय की महन्ताई की गद्दी से हटाने के पश्चात् त्रिवेणी धाम शाहपुरा के परमपूज्य महन्त श्रीभगवानदासजी के संरक्षण में रहना पड़ा था। उन्हीं के कहने व सिफारिश के बल पर श्रीहरिबल्लभाचार्यजी के पूर्व आश्रम की धर्मपत्नी पार्वती बाई (मांजी साहब) गलता ठिकाना की सहमति से महाराज साहब के आदेश पर इनके पक्ष में 11.07.1943 को नियुक्ति पत्र जारी किया गया।

इसके पश्चात् बड़े भारी महन्तीय समारोह में श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के अनी अखाण्डों, आचार्यों, श्रीमहन्तों, पीठाधिपतियों एवं बड़े –बड़े विद्वानों के सानिध्य में इनका चादर दस्तुर हुआ। इस खर्च का वहन सेठ बंशीधरजी लड़ीवालों ने किया जिसके प्रत्यक्ष गवाह के रूप में उनके पुत्र श्रीरामबल्लभजी लड़ीवाले आज भी मौजूद हैं। अब आप देखें कि श्रीरामोदराचार्यजी को जो कि श्रीरामानन्द सम्प्रदाय में दीक्षित विरक्त संन्यासी वैष्णव थे। आपने सन् 1955 तक लेटर पैड पत्र व्यवहार एवं न्यायपालिकाओं में अपने को श्रीरामानन्द सम्प्रदाय कहा है। इन्हीं के कार्यकाल सन् 1944 में गलता पीठ के बारे में प्रश्न उठा कि ये पीठ श्रीरामानन्द सम्प्रदाय की है या श्रीरामानुज सम्प्रदाय की है।

इसके आचार्यगण राजा महाराजाओं को मन्त्र दीक्षा देते आये है, वे राम मन्त्र की दीक्षा देते थे या नारायण मन्त्र की इस बात की जानकारी करने पर पुराने कागजातों (दस्तावेजों) से ज्ञात हुआ कि सम्वत् 1885 में श्रीसीतारामाचार्यजी के द्वारा महाराजा को राममन्त्र दिया गया। इसी प्रकार का फाल्गुन सुदी सम्वत् 1901 में श्रीहरिप्रसादाचार्य के द्वारा महाराज के गले में कण्ठी बांधना एवं राममन्त्र देना साबित हुआ जिसके आधार पर तत्कालिक परम्पराओं एवं स्थितियों की विवेचना करके 20 अप्रैल, 1944 को रिपोट दी गयी कि गलता पीठ के

आचार्यगण महाराजाओं को कण्ठी देकर राममन्त्र प्रदान करते थे कि न नारायण मन्त्र इससे सिद्ध होता है कि गलता गद्दी श्रीरामानन्द सम्प्रदाय की है न कि रामानुज सम्प्रदाय की है।

इसी प्रकार गलता निवासी श्रीसरयूदासजी वेदान्ती के द्वारा लिखी गयी ''पुस्तक विरक्त वैष्णव विवाह निषेद्ध'' जिसका 'प्रकाशन' ''अखिल भारतवर्षीय श्रीरामानन्द महासभा'' के प्रकाशन विभाग द्वारा श्रीगोविन्द प्रेस जयपुर से छपाकर सम्प्रदाय के अनुशासनार्थ वितारण किया गया,जिसमें रामोदाराचार्यजी ठिकाना गलता ने अपने नाम की मोहर के साथ अपने को रामानन्दी कहते हुए तारीख 15.02.1947 को अपनी सम्मति प्रदान करते हुए कहा है कि श्रीरामानन्दीय विरक्त वैष्णवों को विवाह करना पूर्वाचार्यों तथा शास्त्र की मर्यादा के सर्वथा विरुद्ध है यदि कोई करे तो उसे उस स्थान से च्युत कर देना चाहिये। दिनांक 12.07.1947 के द्वारा धर्मार्थ विभाग में की गयी अपील जिसमें श्रीहरिबल्लभाचार्यजी के भाई- भतीजों अमरचन्द दामोदर आदि ने अपने को गलता का उत्तराधिकारी सिद्ध करने की चेष्टा के साथ अपने गुजारे के लिये गलता ठिकाने के श्रीचतुर्भजजी एवं श्रीरूपचतुर्भुज इन दोनों मन्दिरों की आवक के साथ स्वयं को स्वामित्व प्रदान करने की प्रार्थना की थी। जिसके जबाब में श्रीरामोदराचार्यजी के वकील स्वरूपनारायणजी ने 29.12.1949 को यह लिखकर दिया कि यह श्रीआचार्यजी खास रामानन्द सम्प्रदाय के एवं श्रीपयहारीजी महाराज के श्रीसम्प्रदाय एवं गलताजी के वंशज लोहार्गल शाखा में है।

जिसके परिणामस्वरूप उन लोगों को ना तो गुजारे के लिये मन्दिर मिले ना और कुछ। अब आईये रामोदाराचार्य की शास्त्रों में निन्दित क्रिया का दर्शन करते हैं। आपने सन् 1956 में सरकार से विवाह करने की अनुमति मांगी,जिसे शास्त्रीय ज्ञान से शून्य तत्कालीन सरकार ने दिनांक 24 मई, 1956 को सशर्त अनुमति प्रदान की जिसमें कहा गया कि विवाह की अनुमति से मूल ग्रान्ट की नेचर में तथा उत्तराधिकार से सम्बन्धित रीति रिवाजों में कोई तब्दीली नहीं होगी। इस प्रकार श्रीहरिबल्लभाचार्यजी के भाई भतीजों वाले प्रकरण,वैश्यकुलीय श्रीहर्याचार्यजी की महन्ताई के साथ श्रीहरिशणाचार्यजी के मरणोपरान्त पांच साल बाद रामोदाराचार्य की महन्ताई और रामोदाराचार्य के साथ सशर्त विवाह की अनुमति देने की बातों से यह सिद्ध होता है कि गलता गद्दी कभी भी पारिवारिक नहीं रही।

विवाह की अनुमति के लिये मैंने तत्कालीन सरकार को शास्त्रीय ज्ञान से शून्य लिखा है उसका कारण है जब व्यक्ति विरक्त संन्यासी साधु बनता है उसका अभिप्राय गृहस्थ जीवन के विषयों से मुख मोड़कर नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का पालन करना होता है। रामोदाराचार्य कोई ब्रह्मचर्य आश्रम के ब्रह्मचारी नहीं थे अपितु लोहार्गल की चतुः सम्प्रदाय की प्रधानपीठ के श्रीमहन्त बनाये गये थे। किसलिये? क्योंकि ये श्रीरामानन्दी विरक्त वैष्णव संन्यासी थे इनके जैसे विरक्त के लिये ही विरक्त वैष्णव विवाह निषेध पुस्तक लिखी गयी। ऐसे लोगों को शास्त्रों में आरूढ़ पतित कहा गया है। यहां पर मैं एक दो उदाहरण दूंगा–

आरूढ़ो नैष्किकं धर्म यस्तु प्रच्यते द्विजः।
प्रायश्चित्तं न पश्यामि येन शुद्धेत्त स आत्महा।।

(अत्रि स्मृति 8–16)

अर्थात् नैष्ठिक ब्रह्मचारी विरक्त साधु, संन्यासी, वैरागी यदि चतुर्थ आश्रम से पुनः द्वितीय आश्रम में आता है तो उसे आरूढ़ पतित कहते हैं। ऐसे आरूढ़ पतित के लिये शास्त्रों में प्रायश्चित्त नहीं बताया गया है। इस प्रकार का भाव श्रीशंकराचार्य श्रीनिम्बाकाचार्यजी,श्रीरामानन्दाचार्य,श्रीरामानुजाचार्य प्रभ्रति भाष्यकारों ने ब्रह्मसूत्र न चाधिकारमपि पतनानुमाना त्तदयोगात् (अ.3पा.4स.41) के भाष्य में किया है। ऐसे लोगों के लिये दक्ष स्मृति के ये दो श्लोक भी देखें। ये क्या कहते हैं–

चण्डालवत्ते बिभ्रष्टा परिब्राजक तापसाः।
तेषां जातान्यपत्यानि चाण्डलैःसह वासयेत्।।
पारिब्रज्यं ग्रहीत्वातु यःस्वधर्म न तिष्ठति।
श्वपदेनाङ्कंयित्वातं राजा शीघ्रं प्रावसयेत।।

अर्थात् विरक्त वेष ग्रहण करके जो भी वैरागी साधु या संन्यासी पुनः गृहस्थ आश्रम में जाता है तो वह चाण्डाल के समान भ्रष्ट हो जाता है। उनकी सन्तानें भी चाण्डालवत् होती हैं। उनको चाण्डालों की बस्ती में ही निवास देना चाहिये। ऐसे साधु संन्यासी के लिये राजा को चाहिये कि उसको कुत्ते से कटवा कर या कुत्ते के पैर की छाप लगा कर देश निकाला कर देना चाहिये। श्रीमद्भागवत पुराण में श्रीवेदव्यासजी लिखते हैं कि–

यः प्रव्रज्य ग्रहात् पूर्वं त्रिर्वगावपनात् पुनः।
यदि सेवेत तान्भिक्षुः से वै वान्ताश्यपत्रपः।।

(भा.पु.7/15/36)

अर्थात् जो व्यक्ति धर्म, अर्थ और काम का मूल कारण गृहस्थ आश्रम को छोड़कर वैरागी साधु संन्यासी बन जाता है लेकिन संयम भक्ति के अभाव में पुनः गृहस्थ आश्रम में चला जाता है अर्थात विवाह करता है तो निश्चित ही वह निर्लज्ज संन्यासी वैरागी वमन(उल्टी) को चाटने वाले श्वान के समान हैं। और देखें गलता पीठ के संस्थापक श्रीकृष्णदासजी पयहारीजी के बाबा गुरु श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के नाम से जाना जाने लगा वे स्वनिर्मित ''श्रीवैष्णा मताब्ज भाष्कर'' में वैष्णव धर्म निरुपण प्रकरण में कहते क्या हैं–

न स्त्रियं परिगृह्णीयाद् विरक्तों वैष्णवः क्वचित्।
विवाहेतु कृते स स्यादरूढ़ पतितो ध्रुवम्।।
आरूढ पतितस्यार्थे प्रायश्चितं न विद्यते।
प्रच्युतो नैष्ठिकाद् धर्मादात्महापि प्रकीर्तितः।।
मठाध्यक्षत्वदीक्षदौ बहिष्कार्यः स यत्नतः।।

विरक्त वैष्णव को किसी भी स्थिति में स्त्री वरण नहीं करना चाहिये ऐसा करने से वह आरूढ़ पतित हो जाता है इसके लिये शास्त्रों में शुद्धि का कोई भी उपाय नहीं है। नैष्ठिक धर्म से पतित होने के कारण उसे शास्त्रों में आत्म हत्यारा कहा गया है। इसलिये जब वह स्वयं आत्महत्यारा है तो दूसरों का कैसे उद्धार करेगा? इसलिये ऐसे लोगों को मठ की अध्यक्षता एवं दीक्षा देने के कार्य से बहिष्कृत कर देना चाहिये।

ऐसा विधान क्यों किया गया? इसलिये कि यदि इनको पीठ से नहीं हटायेंगे तो ये लोग समाज की सम्पत्ति को अपने विषय भोगों में विनियोग करेंगे जैसा कि रामोदाराचार्य ने किया है। तब इनका तो पतन हुआ ही है, संस्था की भी भयंकर दुर्दशा हो जायेगी और कुपात्र को दान देने से दानदाता की भी अधोगति होगी जैसे कि ''दातापिनरकं याति पद्मपुराण'' की ये बात श्रीगोविन्देवजी के प्रांगण में लिखी हुई है। यहां पर ध्यान रखने की बात है कि जिन विरक्त महात्माओं ने जिन–जिन मठ मन्दिर गद्दियों की स्थापना की है उसका मूल उद्देश्य मठ मन्दिरादि की देवोत्तर सम्पत्ति से देव सेवा, धर्म सेवा, संस्कृत एवं

संस्कृति का प्रचार–प्रसार, गौशाला, अनाथालय, चिकित्सालय, सनातन साहित्य का प्रचार–प्रसार, साधु, ब्राह्मण, अतिथि सेवा हो।

इसी के लिये उन पूर्वाचार्यों ने अपने त्याग तप के बल से राजा, महाराजाओं के साथ–साथ धार्मिक जनता से देवोत्तर सम्पत्ति का संग्रह किया था। जिसमें से वे स्वयं के उपयोग में कुछ भी नहीं लेते थे, क्योंकि वे अपनी आवश्यकताओं को तो दुग्ध,फलाहार,कन्दमूल,लंगोटी,कमण्डल और कटि वस्त्र तक सीमित रखते थे। ऐसे महापुरुषों के पास जो कुछ भी था वह जनता जनार्दन की सेवा के लिये ही था।

ऐसी स्थिति वैरागी बनने के पश्चात् विवाह करने वाले पीठाधीशों के लिये असम्भव होगी, क्योंकि बैरागी हो जाने से वह अपने पूर्व आश्रम(गृहस्थाश्रम) या पैतृक सम्पत्ति से वंचति हो जाता है। इस प्रकार उसके पास स्वयं की आय का कोई स्रोत नही होता, जिससे वह अपनी गृहस्थी का निर्वाह कर सके। दूसरी बात विरक्त होने के पश्चात् उसने तो अपनी इन्द्रियों की लोलुपता के कारण ही विवाह किया है तो उनकी तृप्ति के लिये देवोत्तर सम्पत्ति के अपव्यय करने में उस विवेक शून्य व्यक्ति को किंचित भी संकोच नहीं होगा और इसके अतिरिक्त उसके पास कोई चारा नही बचता जिससे वह अपनी शास्त्र विरुद्ध इच्छाओं को पूरा कर सके। रामोदाराचार्य उपरोक्त श्रेणी में लंगोटीधारी साधु थे जिनसे पास कुछ निजी सम्पत्ति नही थी। सरकार एवं समाज के द्वारा इनको नियुक्त किया गया था। सरकार की अनुमति से आपने शादी की। आज तक इतिहास में एक भी ऐसा उदाहरण नहीं है कि किसी ने सरकार से अनुमति लेकर शादी की हो। इस बात से यह सुनिश्चित होता है कि निहंग रहने की शर्त पर ही आपको गद्दी मिली थी। इन बातों से यह सिद्ध होता है कि आप सरकार के अधीन थे न कि स्वतन्त्र।

गलता ठिकाने का मन्दिर राजकीय सुपुर्दगी श्रेणी का मन्दिर है। देवस्थान विभाग में लिखा है कि राजकीय सुपुर्दगी श्रेणी की सूची में आने वाले राजकीय मन्दिर पंजीयन से मुक्त हैं ऐसा स्वयं देवस्थान विभाग मानता है। फिर 1963 में स्वहितधारक देवस्थान विभाग ने किस आधार पर गलता पीठ को एकल ट्रस्ट के रूप में रजिस्टर्ड कर दिया था। निश्चित यह कार्यवाही भ्रष्टाचार की बली वेदी पर सम्पन्न हुई है।

लेकिन समय आने पर ईमानदार अधिकारी ने देवस्थान विभाग उदयपुर की **अपील संख्या 8/1979** के निर्णय दिनांक 27.01.1981 में कहा हैं कि राजकीय मन्दिरों के सम्बन्ध में राज्य सरकार को प्रन्यासी के अधिकार निहित है। इसलिये ठिकाना गलता के पंजीयन आदेश 26.04.1963 भी अवैध है। इसके साथ आगे आदेश में उन्होंने लिखा है कि गलता ठिकाने के सम्बन्ध में सहायक आयुक्त द्वारा प्रसारित पंजीयन आदेश दिनांक 26.04.1963 भी निरस्त किये जाते हैं लेकिन आज तक ऐसा नहीं हुआ। यदि हुआ होता तो गलता पीठ को पैतृक बताकर जनता की सम्पत्ति की अपने हितों में खुर्द-बुर्द करने वाले रामोदाराचार्य एवं उनके पुत्र अवधेशाचार्य आदि वहां नही होते और वे नही होते तब तो कोई त्रिवेणी महाराज या रैवासा महाराज जैसे विरक्त सन्त गलता में होते तो आज तक पीठ की कायाकल्प हो चुकी होती।

इतनी स्पष्ट स्थिति होने के उपरान्त आगे क्या हो सकता है? इसकी स्पष्ट कल्पना की जा सकती है। अशास्त्रीय,अनैतिक विवाह के उपरान्त निम्नता की पराकाष्ठा को प्राप्त व्यक्ति कहां तक गिर सकता है इसकी कल्पना नही की जा सकती। जैसे सन् 1963 में देवस्थान विभाग में कूट रचना के साथ एक ट्रस्ट बना जिसमें आज की तारीख में गलता ठिकाने की अरबों की सम्पत्ति को निजी बताकर ट्रस्ट में शामिल नही किया। इसके पश्चात् इस देवोत्तर सम्पत्ति का सन् 1971 में षडयन्त्र पूर्व योजना के साथ खुर्द-बुर्द की नियत से रामोदराचार्य ने अपने साले से अपने ऊपर केस (मुकदमा) करवाया कि रामोदराचार्य मेरे भांजों में सम्पत्ति का बंटवारा नही कर रहे हैं जबकि भांजे उस समय नाबालिग थे। लेकिन रामोदराचार्य की उतावली ने ये मुदकमा करवाया। जबाब में इन्होंने हां मैंने बंटवारा नही किया,अब कर दूंगा। इस प्रकार कोर्ट को अंधरे में रखकर अपनी कुटिल नीति के तहत गलता पीठ की आज की तारीख में अरबों की देवोत्तर सम्पत्ति जिसका विनियोग जनता-जनार्दन की सेवामें होना था उसका माँ-बाप में विभाजन हो गया। इस प्रकार के लोगों की भूख का एक नमूना और देखें-

1. गलता घाटी के हनुमानजी के मन्दिर को हड़पने के लिये इसने देवस्थान में दावा कर दिया जिसका फैसला इनके पक्ष में हुआ,किन्तु अपील संख्या 8/1979 के माध्यम से कार्यालय आयुक्त देवस्थान विभाग उदयपुर से निर्णय

रामोदराचार्य के खिलाफ दिनांक 27.01.1981 को हुआ। जिसमें इनकी पुरी पोल खोली गई है।

2. लोहार्गल में खाकीजी का मन्दिर श्रीरामानन्द सम्प्रदाय का है। उसमें भी रामोदराचार्य ने अपनी टांग अड़ाते हुए श्रीनृसिंहजी छोटा तालाब सीकर पत्रावली 49175 के माध्यम से दिनांक 07.11.1990 में शपथ पत्र प्रस्तुत किया।

3. अवधेशाचार्य जो कहता है कि रामानन्दी सन्त कब्जा करने आये थे। वस्तुत: ये लोग अपनी पीठ के दर्शनार्थ गये थे कोई भी व्यक्ति यह जान सकता है कि कब्जा न्यायालय के आदेश से या गुण्डों के माध्यम से किया जाता है जिसका जीता जागता उदाहरण अवधेशाचार्य खुद है। जिसने खेड़ा बालाजी माधोराजपुरा तहसील फागी जिला जयपुर पर गुण्डों के माध्यम से कब्जा करने की नियत से जन्माष्टमी 1993 को गया जिस दिन लोग व्रत उपवास करते हैं उस दिन गुण्डों को ले जाकर 50वर्ष से पूजा कर रहे पुजारी से मारपीट की और उनको भगा कर स्वयं पुजारी के स्थान पर बैठ गया लेकिन गांव वालों को मालुम पड़ा तो वे लोग आये और तब उनके आने पर इनको जान बचा कर भागना पड़ा।

4. खुर्द–बुर्द का उदाहरण देखे वि.सं.1923 में राय गणपतजी ने चांदपोल बाजार एवं गणगौरी बाजार में 35दूकाने, 2थड़ी, एक नोहरा गलता ठिकाने को दान दिया। जिसे अवधेशाचार्य के पिता रामोदराचार्य ने गिफ्ट डीड के द्वारा निर्लज्जता पूर्वक इस देवोत्तर सम्पित्त को परिवार में बांट दिया और परिवार में अवधेश कुमार (अवधेशाचार्य)27.12.1975 को दुकान नम्बर149 गोविन्दनारायण को, 150 रामरतन झालाणी को और दिनांक 02.06.1976 को इसी प्रकार दुकान नम्बर 153 सीताराम को, 9 अक्टूबर 1975 को बेच दी। इस प्रकार और भी कई दुकानें हैं जिन्हें बेच दिया गया है। इसके अतिरिक्त निजी नाम से किराये पर दे रखा है। जिन्हें सरकार को हस्तक्षेप करके रामानन्दी वैष्णव को सौंप देना चाहिये क्योंकि सामाजिक सम्पत्ति को विरक्त ही समाज हित में लगाते हैं।

5. यह बताना आवश्यक हैं कि जिस गलता पीठ के अवधेशाचार्य और इनके पिता अपनी पैतृक परम्परा की मानकर मनमानी की और कर रहे हैं। उसके संस्थापक श्रीकृष्णदास पयहारीजी महाराज थे। जिन्होंने दौसा में दायमा ब्राह्मण परिवार में जन्म लिया था। पश्चात् गृह त्याग कर श्रीरामानन्दाचार्यजी के शिष्य श्रीअनन्तानन्दजी

से दीक्षा ग्रहण करके विरक्त वैरागी साधु हो गये थे। जिससे उनकी विरक्तों की परम्परा चली जिसके कारण श्रीहरिशरणाचार्य पर्यन्त गलतापीठ की एक इंच भूमि का बंटवारा नही हुआ। उनके परिवार से कोई भी व्यक्ति पीठ का अधिकारी बनने के लिये दावेदार नही हुआ। इसका अर्थ यही है कि यह पैतृक पीठ नहीं है।

6. अवधेशाचार्यजी कह रहे हैं कि पयहारीजी ने रामानुज सम्प्रदाय पीठ की स्थापना की थी। सोचो जरा पयहारीजी स्वयं श्रीरामानन्दाचार्य की परम्परा में हैं तब वे रामानुज की परम्परा में पीठ की स्थापना क्यों करेंगे? बड़कलै और तेनकलै का अपभ्रंस बड़गल और तिंगल है इनका अर्थ उत्तरपथ और दक्षिणपथ होता है वस्तुत: इसका अर्थ है संस्कृत वेदान्त और द्राविड़ वेदान्त। ये दोनों भेद श्रीरामानुज सम्प्रदाय में होते हैं क्योंकि उनके यहां अल्वारों की वाणी को द्रविड वेदान्त कहते हैं। श्रीरामानन्द सम्प्रदाय में दो वेदान्त नहीं हैं क्योंकि द्रविड–दक्षिण की भाषा से हमारा कोई लेना–देना नहीं है। यहां तो देववाणी संस्कृत भाषा के वेदान्त को ही मानते हैं। इसलिये तिंगलायत शब्द का प्रयोग पयहारीजी की परम्परा में जोड़ना निरर्थक हैं।

7. यहां एक बात यह ध्यान देने लायक है कि अवधेशाचार्य बार बार कह रहे हैं कि पयहारीजी ने रामानुज की परम्परा गद्दी को स्थापित किया तो उनसे मेरा एक ही प्रश्न है कि क्या गलता में लक्ष्मीनारायण भगवान् विराजमान है या सीतारामजी और राधाकृष्ण, पयहारीजी नारायण मंत्र के उपासक थे या राममंत्र के, गलतापीठ के आचार्य नारायण मंत्र देते है या राममंत्र। सभी का इतिहास प्रसिद्ध उत्तर श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के पक्ष में होगा क्योंकि यह बात जगत प्रसिद्ध है कि श्रीसम्प्रदाय की सनातन रामोपासना में कुछ काल के लिए जो शिथिलता आई थी उसको श्री सम्प्रदाय के मध्यवर्ती आचार्य शिरोमणि प्रस्थान त्रय पर 'आनन्दभाष्य' के रचियता हिन्दू धर्मोद्धारक श्रीसाकेतबिहारी रामजी के अवतार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी के प्रशिष्य श्रीकृष्णदासजी पयहारी थे जिन्होंने गलतापीठ की स्थापना की थी। अत: यह पीठ श्रीरामानन्द सम्प्रदाय की है न कि रामानुज सम्प्रदाय की है।

8. यदि आप कहे कि श्रीरामानुज की परम्परा में श्रीरामानन्द है ऐसा इतिहासकार कहते हैं तब तो वैष्णव साधना और सिद्धान्त हिन्दी साहित्य पर उसके प्रभाव

लेखक डॉ. भुवनेश्वरनाथ मिश्र ''माधवजी'' श्री बल्लभाचार्य को श्रीरामनुज की परम्परा में बताते हैं और ''भारतवर्षीय प्राचीन चरित्र कोश'' में श्री निम्बकाचार्यजी को रामानुज सम्प्रदाय का कहा गया है। इस प्रकार इतिहासकारों की भूल के कारण क्या अन्य सम्प्रदाय ही नही हैं? इसलिये जिस प्रकार इनके लिये विद्वान लेखकों से भूलवश उपरोक्त बातें लिखी गई हैं। जैसे अन्य सम्प्रदाय स्वतन्त्र है उसी प्रकार श्रीरामानन्द सम्प्रदाय स्वतन्त्र है। जो कि वैष्णवों के चतु:सम्प्रदाय के संगठन में अग्रगण्य है। जबकि चतु:सम्प्रदाय में तो रामानुजियों का कहीं नाम ही नहीं है। इस बात की जानकारी महाकुम्भों में मेलाधिकारियों से मिल जायेगी।

आप कहे कि श्री रामानन्दाचार्यजी के पूर्वाचार्य रामानुजी हैं तो यह सर्वथा असत्य है क्योंकि श्री संप्रदाय की अबाध रूप से चलने वाली गुरु परम्परा नाभाजी कृत ''भक्तमाल'' पर श्री रूपकलाजी कृत टीका में श्री रामजी से प्रारम्भ होकर श्री रामानन्दाचार्य पर्यन्त दी हुई है जिसका प्रकाशन सन् 1905 में हुआ था वो परम्परा श्री अग्रदासजी कृत परम्परा के अनुसार है। बाकी 7–8 प्रकार की, विभिन्न प्रकार की सभी परम्परायें मिलावटी हैं जो कि श्री संप्रदाय (श्री रामानन्द संप्रदाय) को नष्ट करने के उद्देश्य से, मैं रामानुजी तो क्यों कहूँ, धूर्तो के द्वारा जोड़ी गयी थी। जिनकी बाद में पोल खुल गयी और उनको कचड़ेदान में डाल दिया गया। लेख बढे.न इसके लिये उदाहरण के तौर पर मैं यहाँ एक नाम ही देता हूँ देखें श्री बरवरमुनि को रामानन्दाचार्य की कहीं 11 पढ़ी, कहीं 14–15वीं पीढ़ी पूर्व का आचार्य बताया गया है। जबकि श्री वरवर मुनि का जन्म ईस्वी सन् 1370 (संवत् 1427) में हुआ हैं उद्धृत ''वैष्णव साधना और सिद्धान्त'' (पृष्ठ 30) श्री बरवरमुनि कृत गीता की टीका एवं संस्कृत साहित्य विमर्श (पृष्ठ 265) इस प्रकार जब श्री बरवरमुनि श्री रामानन्दाचार्य के जन्म से 71 वर्ष बाद के हैं तब ये श्री रामानन्दाचार्य जी के पूर्वाचार्य कैसे हो सकते हैं। यह बात सामान्य व्यक्ति भी समझ सकता है कि जिस व्यक्ति का अभी जन्म ही नहीं हुआ वो बाबा कैसे बन सकता है, लेकिन इतिहासकारों ने इस बात का विचार नहीं किया वरना वो कभी भी श्री रामानन्दाचार्य को श्री रामानुजाचार्य का अनुवर्ती नहीं लिखते।

अवधेशाचार्य गलतापीठ को उत्तर तोताद्री लिखकर यह सिद्ध करना चाहते हैं कि यह पीठ रामानुजी है। शायद इन्हे मालून नहीं है कि उत्तर भारत में रामानुज संप्रदाय की जितनी पीठ हैं वो दक्षिण की पीठों से सम्बन्धित हैं लेकिन

गलतापीठ दक्षिण की किसी भी पीठ से सम्बन्धित नहीं है। हाँ ''हिन्दी साहित्य का इतिहास'' में रामचन्द्र शुक्ल ने यह जरूर लिखा है कि रामानुज संप्रदाय में दक्षिण में तोताद्रि मठ का जो महत्व है वैसा ही उत्तर भारत में गलतापीठ का है। क्यों न हो, जिस पीठ से 18 द्वारा गद्दियों के साथ अनेक विशिष्ठ पीठें श्री रामस्नेही जैसा एक संप्रदाय निकला हो। दूसरी बात उत्तर तोताद्रि मठ तो अयोध्या और वृन्दावन में है क्योंकि उनका सम्बन्ध दक्षिण तोताद्रि से है इसलिये उन्हें उत्तर तोताद्रि मठ कहते हैं। न गलता गद्दी को उत्तर तोताद्रि मठ कहते हैं।

(क) राजस्थान पत्रिका में श्री नन्दकिशोर पारीक की तरफ से ''नगर परिक्रमा'' नामक कालम में श्री बालानन्द मठ के इतिहास के क्रम में जयपुर में तो तिलक विवाद चला था उसी क्रम में गलता से रैवासा के महन्त को संवत् 1922 चैत्र कृष्णा द्वितीय में लिखा गया पत्र है, जिसमें शैवों को समुचित उत्तर देने के लिये उस जमाने में वृन्दावन से श्री रंगाचार्य जी को शास्त्रार्थ के लिये बुलाने के लिए गलतापीठ के आचार्यजी की तरफ से 10,000/- दस हजार रुपये की हुण्डी भेजी गयी थी। जो आज के जमाने में 10,00,000/-दस लाख से ज्यादा कीमत रखते हैं। इतनी रकम लेकर वैष्णव संप्रदाय की तरफ से शास्त्रार्थ के लिये आने वाले रामानुजी यदि, श्री रामानन्द संप्रदाय को अपना मानते, गलतापीठ को अपना मानते तो शुल्क लेकर शास्त्रार्थ के लिये नहीं आते अपितु स्वयं वैष्णव धर्म की रक्षार्थ विवाद को सुनते ही सहर्ष अपना दायित्व समझकर आगे चलकर आते। जबकि इनके आचार्यो की श्री रामानन्द संप्रदाय के नागाओं ने कई बार वैष्णवधर्म प्रचारार्थ गोसांइयों के आक्रमण से रक्षा की थी ऐसी स्थिति में ये कृतघ्न लोग किस मुँह से गलता को रामानुजी बता रहे हैं।

(ख) दूसरी बात श्री राघवाचार्य जी ने 31वें वर्ष के तीर्थांक नामक विशेषांक 26-27 पृष्ठों में श्री रामानुज संप्रदाय के ''अष्टोत्तर दिव्यदेश'' एवं ''रामानुज'' संप्रदाय पीठ एक अध्याय'' इन लेखों में कहीं पर गलता गद्दी का उल्लेख नहीं किया। इससे भी सिद्ध है कि गलता गद्दी से रामानुजियों का कुछ लेना-देना नहीं है।

गलता पीठाधिपति श्री हरिशर्णचार्य जी के दो पत्र ''परम्परा परित्राण'' लेखक जु.गु. स्वामी भगवताचार्य में छपे हैं। एक पत्र श्री अग्रेदेवाचार्य कृत परम्परा के समर्थन में आयोध्याजी के वैष्णवों को तारीख 04.07.1924 आषाढ़ शुल्क

द्वितीय शुक्रवार संवत् 1981 में लिखा गया है। दूसरा पत्र 13.05.1928 को स्पष्टीकरण के रूप में लिखा गया है, जिसमें वासुदेवदास के द्वारा छपाये गये तथा रामटहलदास जी के द्वारा संशोधित श्री वैष्णवताब्ज भास्कर में श्रीमन्नारायण वाली परम्परा के प्रति गलतापीठ की झूंठी सन्मती उनके दस्ख्वत के साथ छापी गयी है। उस लेख और सन्मति का श्री हरिशरणाचार्य जी ने खण्डन करते हुए लिखा है कि ''हम श्री रामानन्दियों की वही परम्परा है जिसके लेखक श्री अग्रदेवजी महाराजा हैं। जिसका आरम्भ ''सीतानाथ समारम्भा'' से होता है, जिसकी विजय उज्ञैन कुम्भ पर हुई है। इसके अतिरिक्त हमारी कोई भी परम्परा नहीं है।

उपरोक्त सभी प्रमाण श्री रामानन्द सम्प्रदाय के पक्ष में इतने स्पष्ट हैं कि इनका कोई भी प्रतिकार नहीं कर सकता।

अब में इस लेख को संक्षिप्त करते हुये जनता को यह बताना चाह रहा हूँ कि गलतापीठ की सम्पूर्ण अरबों की सम्पत्ति सार्वजनिक है न कि अवधेशाचार्य और उनके पिता के कथनानुसार पैतृक। यदि यह सम्पत्ति पैतृक होती तो जितनी गृहस्थ पीढ़ी अवधेशाचार्य गिना रहे हैं उतनी पीढ़ियों में बंटवारा होते-होते आज तक कुछ भी नहीं रहता अथवा सालासर, गोनेर प्रभृति गृहस्थ पीठों के समान ओसरों की लाईन में अवधेशाचार्य का पता नहीं कौनसा नम्बर होता।

इससे यह भी सिद्ध होता है कि गलतापीठ में श्री हरिशरणाचार्य तक विरक्त परम्परा का ही निर्वाह हुआ है। किसी भी आचार्य ने अपने परिवार-सम्बन्धी-कुटुम्बीजनों में से किसी को भी एक भी मकान दूकान आदि ना बेचा है और ना ही दान या गिट के रूप में दिया है। ऐसा भी नहीं कि उनके परिजन नहीं थे, स्वयं हरबिल्लभाचार्य के परिजनों ने रामोदाराचार्य को गद्दी पर बैठने के बाद विभाग से गुजारे के लिये गलता से सम्बन्धित होने के कारण कुछ मन्दिरों की मांग की लेकिन विभाग ने उनकी प्रार्थना को नहीं स्वीकार किया।

इससे यह सिद्ध होता है कि गलता की एकमात्र गृहस्थ पीढ़ी रामोदाराचार्य है। जिन्होंने गलतापीठ की अथाह चल सम्पत्ति को तो खुर्दबुर्द किया ही है जिसका कोई लेखा-जोखा नहीं है। इसके साथ पीठ की अचल सम्पत्ति का आपस में बंटवारा बेचान आदि करके जनता-जनार्दन का जो नुकसान किया है उसकी भरपाई नहीं हो सकती, अत: जिस सार्वजनिक सम्पत्ति से धर्मार्थ औषधालय,

गौशाला, पाठशाला, विद्यालय महाविद्यालय, पुस्तकालय आदि का संचालन किया जा सकता था, उस सार्वजनिक सम्पत्ति का इस प्रकार एक परिवार में विभाजन के साथ उसका दुरुपयोग होना और उसी को गद्दी पर बिठाये रखना सम्पूर्ण समाज एवं सनातन धर्म के प्रति अन्याय है। अत: सरकार को चाहिये कि गलतापीठ जिस श्री रामानन्द संप्रदाय की निहंग परम्परा की है उसी श्री संप्रदाय (श्री रामानन्द संप्रदाय) को सम्हलाकर उनको सार्वजनिक कार्य करने की जिम्मेदारी विशिष्टजनों की निगरानी में सौंपी जावे। जिससे गलतापीठ की सम्पत्ति के सदुपयोग के साथ गलतापीठ पुन: पूर्वाचार्यो के अनुसार महिमा मण्डित होकर अपने अतीत के वैभव को प्राप्त हो सके।

श्रीरामानन्द सम्प्रदाय और श्री रामानुज सम्प्रदाय में भेद

(1) श्री रामानन्द सम्प्रदाय में बिछावन से उठते ही प्रात: स्मरामि रघुनाथमुखारविन्दम् स्तोत्र के पाठ से अपने इष्टदेव श्रीराम का प्रात:स्मरण किया जाता है और श्रीरामानुज सम्प्रदाय में प्रात: स्मरामि **भवभीति महार्ति शान्त्यै नारायणं गरुडवाहनमब्जनाभम्** स्तोत्र पाठ से अपने इष्टदेव श्री नारायण का प्रात: स्मरण किया जाता है।

(2) श्रीरामनुज सम्प्रदाय में गृहस्थ आचार्य होते हैं और उनकी वंश परम्परा होती है। परन्तु श्री रामानन्द सम्प्रदाय में न तो गृहस्थ आचार्य हो सकता है और न वंश परम्परा किन्तु आचार्य परम्परा होती है।

(3) श्री रामानुज सम्प्रदाय में ज्ञान सम्बन्ध से भी आचार्य परम्परा बनती है, परन्तु श्रीरामानन्द सम्प्रदाय में दीक्षा से ही आचार्य परम्परा बनती है।

(4) श्री रामानन्द सम्प्रदाय में प्रस्थानत्रय श्रीमद्भगवद्गीताभाष्य 2, ब्रह्म सूत्र भाष्य– 3 उपनिषद्भाष्य सिद्धान्त वेदान्त परम्परा है और श्रीरामनुज सम्प्रदाय में श्रीभाष्य:, गीताभाष्य षट्साहस्त्री उभय वेदांत (संस्कृत वेदान्त द्राविड़ वेदान्त) साथ वेदान्तदेशिक के श्रीमदहस्यत्रयसार (रहस्य शास्त्र) का संगम कर ग्रन्थचतुष्टय की मान्यता और दो वेन्दान्तों का सिद्धान्त है।

(5) श्रीरामान्द सम्प्रदाय विरागी (विरक्त) भक्ति और तप प्रधान है। जबकि श्रीरामानुज सम्प्रदाय गृहस्थ कर्म और आचार प्रधार है। आचार तो दोनों सम्प्रदायों में है परन्तु दोनों के आचारों में अन्तर है। श्रीरामान्द सम्प्रदाय में विचार प्रधान आचार है। यह आचार का तात्पर्य है शब्दार्थ नहीं । परन्तु श्रीरामानुज सम्प्रदाय में आचार का अतिवाद है जो अति आचार –अत्याचार या दम्भ (जो कर दम्भ सो बड़ आचारी) का रूप धारण करता है। उदाहरणार्थ भोजन के दृष्टि दोष विषय में भोजन पर तृषित अतृप्त क्षुधित व्यक्तियों का जिसे उस भोजन में से नहीं मिलने वाला है की दृष्टि ही दूषित है क्योंकि उसे देखकर खाने की इच्छा होती है और वह उसे नहीं मिलता । परन्तु उस भण्डारे में साथ खाने वालों का दृष्टि दोष नहीं होता क्योंकि उसके प्रति उसकी अतृप्तकांक्षा नहीं रहती यही दृष्टि के दोषादोष का तात्पर्य है और यही श्रीरामानन्द सम्प्रदाय में मान्य है। परन्तु श्रीरामानुज सम्प्रदाय में साथ (एक समूह) में पाने वालों का भी दृष्टि दोष माना जाता है जो

दृष्टि दोष की अति व्याप्त परिभाषा या लक्षण होने से दम्भ मात्र या दोष पूर्ण है। इस प्रकार श्रीरामानुज सम्प्रदाय के आचार में अतिवाद है, और श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के आचार में **अति सर्वत्र वर्जयेत्** के अनुसार अतिवाद का त्याग और मध्यम मार्ग का अनुसरण है। जो श्रीमदभगवद्गीता के–

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नत:।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन।
युक्ताहार विहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दु:खहा।

सिद्धान्तानुसार है। इसी प्रकार गंगाजल को विष्णुपादोदक मानकर उससे भगवान की पूजार्चना में निषेध अतिवाद और तात्पर्य विरुद्ध है। विष्णुपद नाम आकाश का है और वह सर्वव्यापक है उससे सभी कुछ स्पष्ट है तब भगवान की पूजा के योग्य कुछ भी नहीं रहा। पुन: (त्रेधानिदधे पदम्–ऋ) भगवान् ने पैरों से तीनों लोकों को नाप लिया। तब अर्चना के योग्य क्या रहा यह सब आचार का शब्दार्थ (अभिधार्थ) एवं अतिवाद है तात्पर्य और यथार्थवाद नहीं। भगवान अविकारी है अत: उनके स्पर्श से विकार या अपवित्रता होती ही नहीं है। तब गंगाजल को पूजा के अयोग्य समझना तात्पर्य ज्ञान रहित अति आचार या दम्भ मात्र है। गंगाजी या किसी नदी अथवा तालाब में मनुष्य प्रवेश कर स्नान करता है। उस जल में मनुष्य का पैर ही नहीं अपितु गुप्तांग अपवित्र अंग जल में निमग्न रहता है, तब वह जल अपवित्र और स्नान के योग्य क्यों नहीं होता? **'आप: पुनन्तीति सर्वम्'** सिद्धान्त है। **समरथ कहं नहि दोष गुसाई। रवि पावक सुरसरि की नाई।** आदि कहा गया है। तब गंगाजल से भगवान् को स्नान नहीं कराना और जलपानादि नहीं कराना आदि अतिवाद और दंभ के अतिरिक्त क्या हैं इसी से श्रीतुलसी बाबाजी लिखे हैं– **जो कर दम्भ सो बड आचारी।।''**

(6) श्रीरामानन्द सम्प्रदाय में द्विभुज स्वरूप ही परस्वरूप या परम ब्रह्म का स्वरूप माना जाता है।

स्थूलमष्टभुजं प्रोक्तं सूक्ष्मं चैव चतुर्भुजम्।
परम् तु द्विभुजं प्रोक्तं तस्मादेतत् त्रयं यजेत्।।
प्रकृतया सहित: श्याम: पीतवासा: प्रभाकर:।

द्विभुज कुण्डली रतनमाली धीरो धनुर्धरः।
ततः सिंहासनस्थः सन् द्विभुजो रघुनन्दनः।
धनुर्धरः प्रसन्नात्मा सर्वाभरणभूषितः।

श्रीरामतापनी उपनिषदादि मे द्विभुज श्रीरामजी की उपासना की जाती है **द्विभुजस्यैव रामस्य सर्वशक्तेः प्रियोत्तम!**

ध्यानमेवं विधातव्यं सदारामपरायणैः। (3-6 श्रीवैष्णवः भास्करः।) जो बाहुम्यां तब धन्वने। (शु.य.1।6।14) एवं बाहुम्यामुततेनम्ः। (शु.य., 1-6।1।) आदि वेदमन्त्रानुकूल है। परन्तु श्रीरामानुज सम्प्रदाय में

चतुर्भुज को पररूप या परम ब्रह्म स्वरूप माना जाता है एवं चतुर्भुज विष्णु या नारायण की उपासना की जाती है।

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं. बाहुम्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमि जनयन्देव एकः।।

(ऋ10।81।31) (अर्थवे0 13।2।26) (शु.य.17।19) (श्वेताश्वर 3।13) (तै.स. 4।6।14) (तै. अ. 10।1।3) में तथा

यत्पुरुषंव्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुर्खं किमस्यासीत्किंबाहु किमूरू पादा उच्येते।
ब्राह्मणोस्य मुखमासीद् वाहू राजन्यः कृतः

(शु.य.31।10।11)

(ऋः10।10।12) (अर्थवे0 19।56) आदि वैदिक मन्त्रों में द्विभुज निरूपण का ही रूप है। अतः श्री रामानन्द सम्प्रदाय द्विभुज रूप को ही परात्पर मानकर उपासना करता है।

(7) श्रीरामानुज सम्प्रदाय में वैकुण्ठोत्सव में शव (मुर्दा) का स्नानजल का चरणामृत लिया जाता है तथा उस जल को पवित्र मानकर सबके ऊपर छिड़कना धर्म माना जाता है। इसके विरुद्ध श्रीरामानन्द सम्प्रदाय में मुर्दा के जल को अपवित्र समझा जाता है और ऐसा नहीं किया जाता।

(8) श्रीरामानुज सम्प्रदाय में पंच संस्कार में शंख चक्र का छाप लिया जाता है, धनुषबाण का छाप नहीं क्योंकि उनके इष्ट श्रीनारायण का आयुध शंख चक्र है, धनुषबाण नहीं। इसी प्रकार श्रीरामानन्द सम्प्रदाय में पंचसंस्कार में धनुषबाण का

छाप लिया जाता है, शंख चक्र का नहीं। क्योंकि इनके इष्ट देव श्रीरामजी का धनुषबाण ही आयुध है, शंख चक्र नहीं एवं सम्प्रदायाचार्य श्रीरामानन्दाचार्यजी ने उसकी स्तुति कर इसका ही उपदेश दिया है।

प्रत्यूहव्यूहभङ्गंविदधदुरूबलश्शक्तिमान् सर्वकारी,
भूरिश्रेय:प्रतापोमुनिवरनिकरै:स्तूयमानो विमान:।
रक्षोदैत्यादिनाशी क्षुभितजलनिधिर्लोक जिल्लोकमान्यो।
धन्योनो मङ्गलौघं सपदिसुकुरुताद्रामशस्त्रास्त्रसङ्घ:।

श्री.बै.म.भा. 1।3

(9) श्रीरामनन्द सम्प्रदाय के पंचसंस्कार में माला संस्कार है और सतत कण्ठी यज्ञोपवीत धारण अनिवार्य है।

ताप: पुण्ड्रं तथा नाम मालामन्त्रश्च पंचम:।
अमीहि पंचसंस्कारा: परमैकान्तिहेतव:।
यज्ञोपवीतवद् धार्या कण्ठेलग्ना द्विधाकृति:।

परन्तु श्रीरामानुज सम्प्रदाय में पंचसंस्कार में माला नहीं है इसके स्थान पर 'याग' है एवं सतत माला धारण करने का निषेध है। क्योंकि उनका तर्क है कि तुलसी पवित्र है और इसको मलमूत्रत्यागादि अपवित्र अवस्था में धारण करना अनुचित है। इसके विपरीत श्रीरामानन्द सम्प्रदाय का सिद्धान्त है कि यज्ञोपवीत भी परम पवित्र है (यज्ञोपवीत परम पवित्रम्) और उसको सर्व अवस्थाओं में धारण रखना अनिवार्य है। मूत्रमल त्याग काल में उसे शिरों भाग में चढ़ा दिया जाता है। जब यज्ञोपवीत सर्वावस्था में धारण करना श्रीरामानुज पक्ष में भी दोष नहीं है, प्रत्युत सर्वदा धरण करना अनिवार्य है और सतत नहीं धारण करने पर दोष है। तब कण्ठी का यज्ञोपवीत वत् सतत धारण करना दोष कैसे है और सतत धारण नहीं करने पर दोष कैसे नहीं है? इस प्रकार सतत धारणत्व दोनों पक्षों (कण्ठी और यज्ञोपवीत) में समान है। तब इस पर दोषापति सिद्धान्त नहीं की जा सकती

यत्रोभयो: समो दोष परिहारोऽपि वा सम:।
नैक: पर्यनुयोक्तव्यस्तादृगर्थविचारणे।

अत: श्रीरामानुज सम्प्रदाय की दोषापति सिद्धान्त विरुद्ध और भ्रान्त है वाल्मिकि संहिता में कहा है–

''यज्ञसूत्रं बिना विप्रा वेदहीना यथा क्रिया।
सत्य हीनं तथा वाक्यं मालाहीना न वैष्णवा:।
यस्य कण्ठे न संलग्ना वैष्णवस्य च दुर्मते: ।
तुलसी राजते सोऽथ नाम मात्रेण वैष्णव:।

अत: माला संस्कार और सतत कण्ठी धारण के विषय में श्रीरामानुज सम्प्रदाय श्री रामानन्द सम्प्रदाय में सिद्धान्त भेद तथा प्रबल विरोध है।

(10) श्रीरामनुजसम्प्रदाय पंचसंस्कार में भाग संस्कार मानते हैं और श्रीरामानन्द सम्प्रदाय में याग क्रिया है संस्कार नहीं यह याग क्रिया सभी सम्प्रदायों का कर्तव्य है अत: दोनों सम्प्रदायों में याग के संस्कारत्व एवं ''पंचसंस्कार'' के परिघटकत्व दोनों विषयों में मतभेद ही नहीं अपितु विरोध भी है।

(11) श्रीरामानन्द सम्प्रदायय के ''ध्येय'' एवं ज्ञेय में एक रूपता वा एक वाक्यता होने से नित्य वा नियत साहचर्य रूप अव्यभिचार व्याप्ति है। परन्तु श्रीरामानुज सम्प्रदाय का ध्येय नारायण एवं ज्ञेय रामायण होने से दोनों में भेद होने तथा एकरूपता या एक वाक्यता का अभाव होने से दोनों में पार्थक्य नियत साहचर्य वा नित्यसाहचर्य का व्यभिचार रूप अव्याप्ति है। इस प्रकार श्रीरामानन्द सम्प्रदाय का ध्येय-ज्ञेय भाव सिद्धान्त सिद्ध एवं श्री रामानुज सम्प्रदाय का ध्येय ज्ञेय भाव सिद्धान्त विरुद्ध है।

(12) श्री रामानन्द सम्प्रदाय में पंचसंस्कार में माला संस्कार होता है और इस संस्कार में माला धारण कराया जाता है जिसे सतत् धारण किया जाता है। परन्तु श्रीरामानुज सम्प्रदाय में माला संस्कार नहीं होता है। ये बिना यज्ञोपवीत संस्कार के ही यज्ञोपवीत पहनने के समान पूजाकाल में माला पहन लेते हैं। इस प्रकार श्रीरामानन्द सम्प्रदाय में संस्कार पूर्वक माला धारण किया जाता है और श्रीरामानुज सम्प्रदाय में बिना संस्कार के ही। श्रीरामानन्द संप्रदाय में माला यज्ञोपवीत वत् धारण किया जाता है। परन्तु श्रीरामानुज संप्रदाय में माला धारण नहीं किया जाता है और केवल पूजा काल में पहना जाता है और वह भी बिना संस्कार का पहना जाता है अर्थात वहां अविधि पूर्वक पहना जाता है।। अत:

य: शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते काम कारत:।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्।

तस्माच्छास्त्रंप्रमाणं ते कार्याकर्य व्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्र विधानोक्तं कर्मकतुर्मिहार्हसि।''

शास्त्रवाक्य के विरुद्ध एवं सिद्धान्त विरुद्ध है। ज्ञात्वाशास्त्र विधानोक्तं के भाष्य में स्वयं श्रीरामानुजाचार्यजी ने ही लिखा है– **यथावत् अन्यूनानतिरिक्तं विज्ञाय''।** श्रीरामानन्द सम्प्रदाय में तुलसी माला के सम्बन्ध में शास्त्र विधान है **वैष्णवैः सतत धार्या श्रीतुलसीद्वियष्टिका।**

तां त्यजन् पुरूषों मुढो भ्रष्टसंस्कार एवं हि।
यज्ञसूत्रं बिना विप्रा वेद हीना यथा क्रिया।
सत्यं हीनं यथा वाक्यं माला हीना न वैष्णवाः।
तप्तेन मूले भुजयोः समङ्कनं शरेण चापेन तथोद्धर्वपुण्ड्रकम्।
श्रुति श्रुतं नाम च मन्त्र मालिके संस्कार भेदाः परमार्थ हेतवः ।

(वै.म.भा.)

परन्तु श्रीरामानुज सम्प्रदाय में इसे धारण करने के लिए न तो आचार्य आज्ञा है और न शास्त्र विधि । अतः उनका शास्त्र विधि विरुद्ध माला पहनना श्री रामानन्द सम्प्रदाय से सर्वथा विपरित है। श्रीरामानुजी बन्धुओं को अनियमित माला धारण विषय का कोई विधि वाक्य नहीं मिला तब वे यह वाक्य वृहद्ब्रह्म संहिता के नाम पर उपस्थापित करते हैं।–

सूतके प्रेत कार्ये च तैलाभ्यङ्गे च भोजने।
शयने तुलसीमालामधृत्वैव समाचरेत्।

परन्तु यह वचन बृहद्ब्रह्मसंहिता पाद 1 अध्याय 5 श्लोक 14 सूतकं नैव भवति स्पर्श दोषो न विद्यते अर्थात् चक्रांकित को सूतक और नीचस्पर्श नहीं होता के विरुद्ध होने से व्याघात पूर्ण एतावता अप्रमाणित है। पुनः इस वाक्य से पूजा काल में माला पहनना सिद्ध नहीं होता । रविवार को बिना नमक का ही भोजन करें वाक्य का यह अर्थ कैसे हो सकता है कि मंगलवार को नमक के साथ भोजन करें। बिना बोले ही मलमूत्र का त्याग करे'' का यह अर्थ कैसा होगा कि बोलते हुये ध्यान पूजा करें। **दिवा अभुंजानत्वे सति पीनत्वात्''** की अर्थापत्ति का अवकाश नहीं है क्योंकि पूजायां धृत्वैव के साथ व्याघात नहीं है। पुनः इस श्लोक में अभुंज्जनत्व पीनत्व में व्याघात है परन्तु भूत के अबधृत्वैव का भोजनकाल में निषेध बतलाया गया है। जबकि शास्त्र में कहा गया है कि –

तुलसीकाष्ठमालां वो घृत्वा भुंक्ते द्विजोत्तमः।
सिक्थे सिक्ये न लभते वाजिमेघफलं मुनिः।

अर्थात तुलसी माला धारण करके जो ब्राह्मण भोजन करता है उसे प्रत्येक ग्रास में अश्वमेघ यज्ञ का पुण्य प्राप्त होता है। इस प्रकार तुलसी की माला सदैव धारण करने की बात कही गयी है जिसके अनुरूप चतु:संप्रदाय के सभी वैष्णव सदा गले में तुलसी की माला धारण करते हैं। इस प्रकार के भेदों को पं. सम्राट श्री वैष्णावाचार्य जी श्री वैदेहीकान्त तुर्की प्रभृति विद्वानों के लेख ''श्रीमठ स्मारिका समीक्षा'' वैराग्य ज्योति– आदि ग्रन्थों में प्रकाशित हुए हैं। अभी श्री तुलसीदास जी के द्वारा भी उनको उद्धत किया गया है।

जय जय सीताराम। जय जय सीताराम। जय जय सीताराम।

ऊँ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवाव शिष्यते
ऊँ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

अनन्त श्री विभूषित
श्री नारायणदास जी महाराज

त्रिवेणीधाम - डाकोरधाम

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य एवं उनके द्वारा द्वादश महाभागवत शिष्य

रामानंदः स्वयं रामः प्रादुर्भूतो महीतले

आनन्द भाष्य कर्तारमानन्द पथ दर्शकम्। आनन्द निलयं बन्दे रामानन्दं जगद् गुरुम्।।

सीताराम

हिन्दू धर्मोद्धारक आनन्द भाष्यकार
श्री आचार्य सम्राट जगद्गुरुस्वामी

आचार्य पीठ
श्री पंचगंगा घाट, काशी
जन्म जयन्ति माघकृष्णा तिथि ७ सन् १३५६, उत्तर प्रदेश

यतिराज सार्वभौम अनन्द विभूषित
श्री रामानन्दाचार्यजी महाराज।

ज.गु.श्री अनन्तानन्दाचार्य जी

ज.गु.श्री सुखानन्दाचार्य जी
स्थल-किरीटपुर, उज्जैन मध्य प्रदेश
द्वाराचार्य पीठ चित्रकूट

ज.गु.श्री भावानन्दाचार्य जी

ज.गु.श्री सुरसुरानन्दाचार्य जी
परसा-छपरा बिहार

ज.गु.श्री पीपानन्दाचार्य जी
स्थल-गागरौन गढ़ द्वाराचार्य पीठ
गागरौन गढ़

ज.गु.श्री योगानन्दाचार्य जी
स्थल-सिद्धपुर गुजरात द्वाराचार्य पीठ
योगानन्द मठ आरा बिहार

ज.गु.श्री श्रीरामकबीराचार्य जी

ज.गु.श्री नरहर्यानन्दाचार्य जी
द्वाराचार्य पीठ गढ़वाला-राजस्थान

ज.गु.श्री गालवानन्दाचार्य जी
द्वाराचार्य पीठ - कश्मीर

भक्तराज श्री सेनाजी
स्थल-बांधवगढ़ रीमाराज - मध्यप्रदेश

भक्तराज श्री धन्नाजी
स्थल-पंजाब

भक्तराज श्री रैदास जी (रविदास)
स्थल-काशी

श्री काशी पीठाधीश्वर आचार्य गद्दी श्री पंच गंगाघाट वाराणसी। द्वादश शिष्यगणों के सहित आचार्यचरण विराजमान हैं।

मुद्रक : दी डायमण्ड प्रिंटिंग प्रेस, जयपुर ✆ 0141-256929